ओ३म्

"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"

वैदिक नित्यकर्म विधि

(वर्तमान सार्वदेशिक धर्मार्य सभा द्वारा स्वीकृत पद्धति पर)

महर्षि दयानन्द सरस्वती

"स्वर्गकामो यजेत"

"नौर्ह वा एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम्"
(माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मण)

"स्वर्ग अर्थात् सुख, शान्ति, स्वास्थ्य, दीर्घायु, विद्या, बल, पुत्र, ,पशु धन, सम्पत्ति, यश, कीर्त्ति तथा मोक्ष तक पहुँचाने वाली नौका अग्निहोत्र (यज्ञ) ही है, इसलिए स्वर्ग के अभिलाषी को यज्ञ करना चाहिये"

आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू कश्मीर

शब्द		शब्दार्थ
ओ३म्	:	सर्व रक्षक परमात्मा
भूः	:	प्राणों का भी प्राण
भुवः	:	सब दुःखों से छुड़ाने हारा,
स्वः	:	स्वयं सुखस्वरूप और अपने उपासकों को सब सुखों की प्राप्ति कराने हारा है, उस
सवितुः	:	सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले,
देवस्य	:	कामना करने योग्य,
वरेण्यम्	:	ध्यान करने योग्य,
भर्गः	:	पवित्र शुद्धस्वरूप है,
तत्	:	उसको हम लोग,
धीमहि	:	धारण करें।
यः	:	यह जो परमात्मा
नः	:	हमारी
धियः	:	बुद्धियों को उत्तम गुण, कर्म, स्वभावों में
प्रचोदयात्	:	प्रेरित करे।

गायत्री मन्त्र का कविता में अर्थ

तूने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहा है तू।
तुझ से ही पाते प्राण हम, दुःखियों के कष्ट हरता तू।।
तेरा महान् तेज है, छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु-वस्तु में, तू हो रहा है विद्यमान।।
तेरा ही धरते ध्यान हम, मांगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ठ मार्ग पर चला।।

प्रकाशकः आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू काश्मीर (पंजीकृत)

पंजीकृत संख्या : 99–दिनांक 16–10–1968

पंजीकृत कार्यालय : महर्षि दयानन्द मार्ग,
(सिटी चौक), जम्मू

वर्तमान कार्यालय : आर्यसमाज मन्दिर
बलिदान भवन, बख्शी नगर
जम्मू–पिन 180001

राकेश चौहान	योगेश गुप्ता	रविकान्त
सभा प्रधान	सभा कोषाध्यक्ष	सभा मंत्री
94192–06881	94191–92144	94191–88830

द्वितीय संशोधित सस्करण : 18 मार्च 2018
विक्रमी सम्वत् : 2075
सृष्टि सम्वत् : 1960853119
दयानन्दाब्द : 195
सहयोग राशि : रु० 30/–

प्रकाशकीय

आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू कश्मीर का गत कई वर्षों से यह प्रयास रहा है कि "वैदिक नित्यकर्म विधि" में एकरूपता लाई जाये।

इसी सदंर्भ में स्वर्गीय मुनि डा. योगेन्द्र कुमार शास्त्री (सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के पूर्व मन्त्री) तथा आचार्य विद्याभानु शास्त्री जी के मार्गदर्शन में सभा द्वारा "वैदिक नित्यकर्म विधि" का प्रथम संस्करण सन् 2012 में प्रकाशित किया गया।

डा॰ योगेन्द्र शास्त्री जी के प्रति सम्मान तथा श्रद्धाजंलि अर्पित करते हुए, इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के प्रकाशन पर उनके द्वारा दिये गये शुभ कामना सन्देश को भी स्थान दिया गया है।

वैदिक नित्यकर्मविधि पुस्तक के प्रस्तुत संस्करण में मिले मार्गदर्शन, सम्पादन व प्रकाशन के लिये सभा पद्मश्री डा॰ वेद्कुमारी घई जी का विशेष धन्यवाद करती है, जिन्होंने सन्ध्या व दैनिक यज्ञ के मन्त्रों की विशेष एवं अत्यन्त सुन्दर व्याख्या की है।

वैदिक नित्यकर्म विधि के प्रथम व इस संस्करण के सम्पादन व प्रकाशन में आचार्य विद्यामानु शास्त्री जी का भी आशीर्वाद प्राप्त हुआ। सभा आचार्य जी का भी सहृदय धन्यवाद करती है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः

राकेश चौहान

सभा प्रधान

(प्रस्तावना)

यह हर्ष का विषय है कि आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू कश्मीर "वैदिक नित्यकर्मविधि" का नया संस्करण निकाल रही है। महर्षि दयानन्द ने सत्य सनातन वैदिक धर्मानुसार मनुष्यों के कल्याण के लिए जिन पांचमहायज्ञों – ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ, अतिथियज्ञ – का विधान किया है उन सबका वर्णन इस पुस्तक में है। ब्रह्मयज्ञ या सन्ध्या के सात सोपान हैं। प्रथम तीन मन्त्रों द्वारा आचमन, अंगस्पर्श, मार्जन और प्राणायाम द्वारा शरीर की नीरोगता तथा मानसिक स्थिरता होती है। अघमर्षण के तीन मन्त्र सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के वर्णन द्वारा साधक के हृदय को पापमुक्त होने को प्रेरित करते हैं। चौथे सोपान में मनसापरिक्रमा के छः मन्त्रों द्वारा साधक सभी दिशाओं में प्रभु की उपस्थिति का ध्यान कर अपने द्वेष तथा अभिमान को प्रभु के अर्पित कर देता है। फिर उपस्थान के चार मन्त्रों में साधक प्रकृति से ऊपर उठ कर, आत्मस्वरूप को पहचान कर अपने को प्रभु के समीप पाता है। गायत्री मन्त्र द्वारा उन के प्रति पूर्ण समर्पित होकर पवित्र बुद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है। अन्त में प्रभु का धन्यवाद करते हुए नमस्कार किया जाता है।

दूसरा महायज्ञ देवयज्ञ है जिसे हवन भी कहते हैं। इस पुस्तक में दैनिकयज्ञ तथा बृहद् यज्ञ दोनों को दिया है। बृहद्यज्ञ से पूर्व ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन तथा शान्तिकरण मन्त्रों का पाठ अभीष्ट है परन्तु दैनिकयज्ञ में भी ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना के आठ मन्त्रों का पाठ करना चाहिए। हवन में सुगन्धित हव्य पदार्थों की आहुतियों द्वारा वातावरण शुद्ध और सुगन्धित होता है और प्रार्थना से हवन करने वालों की भावनायें भी

पवित्र होती हैं। प्रार्थना के महत्त्व के विषय में एक विख्यात सर्जन ने बताया – एक बीमार बच्ची की सर्जरी आवश्यक थी पर सर्जरी के बाद भी उस के बचने की आशा कम थी। उसे टेबल पर लिटाया गया। जब अनेस्थिज़िया देने लगे तो उसने पूछा–डाक्टर! आप क्या करने लगे हो? मैने उत्तर दिया–तुम्हें नींद की दवा देकर सुला रहे हैं। तुम जब जागोगी तो ठीक हो जाओगी। वह बोली – मैं तो सोने से पहले प्रार्थना करती हूं तो अभी कर लूं। फिर बच्ची ने प्रार्थना की – हे ईश्वर! डाक्टर मुझे सुला रहे हैं। अब आप ही मेरी रक्षा करना। बच्ची की प्रार्थना सुनकर मेरा हृदय करुणा से अभिभूत हो गया। आंखों के आंसुओं को साथी सहायकों से बचाते हुए मैंने भी उस दिन पहली बार सर्जरी करने से पूर्व प्रार्थना की – हे प्रभु! आप मेरे द्वारा इस बच्ची की रक्षा करवाएं यह मेरी विनम्र प्रार्थना है। वह सर्जरी बहुत कठिन थी पर सफल हुई और मेरे लिए यशस्करी रही। बच्ची नीरोग हो गई। तात्पर्य यही है कि रोगनिवारण में चिकित्सा के साथ–साथ प्रार्थना का भी महत्त्व है।

तीसरा महायज्ञ पितृयज्ञ है जिस में जीवित माता पिता की सेवा करने का विधान है। यदि दादा दादी भी हों तो उनकी भी सेवा करनी चाहिए। मनु लिखते हैं कि माता पिता अपनी सन्तानों के पालन–पोषण में जिन–जिन क्लेशों को सहन करते हैं, उनका बदला सैंकड़ों वर्षों में भी चुकाया नहीं जा सकता अतः माता पिता और आचार्य के साथ सदा प्रिय आचरण करना चाहिए। इन तीनों के सन्तुष्ट होने पर जीवन का सम्पूर्ण तप पूर्ण हो जाता है।

चतुर्थ महायज्ञ बलिवैश्वदेवयज्ञ है जिस में चारों दिशाओं, ऊपर, नीचे, जल, वनस्पति तथा सभी देवों के लिए पत्तल या थाली में घृतमिश्रित भात रखा जाता है। उसके बाद कृमि आदि को दिया जाता है।

पञ्चममहायज्ञ अतिथियज्ञ है। जो कोई धार्मिक परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षापातरहित, शान्त, सर्वहित करने वाले विद्वानों की

अन्न आदि से सेवा करता है तथा उन से ज्ञान प्राप्त करता है वह अतिथि यज्ञ करता है।

इन पञ्चमहायज्ञों के अतिरिक्त पौर्णमासी, अमावस्या आदि विशेष अवसरों पर दी जाने वाली आहुतियों के मन्त्र, जन्मदिवस, भोजन के पूर्व, यज्ञोपवीत धारण करने के समय के मन्त्र, संगठन सूक्त तथा आर्यसमाज के नियम भी वर्णित हैं।

इस पुस्तिका के लिए कतिपय परमोपियोगी सुझाव देने के लिए आर्यसमाज त्रिकुटा नगर के प्रधान श्री भारत भूषण आर्य के प्रति आभार प्रकट करती हूँ। मानव जीवन के कल्याण के लिए अत्यन्त उपयोगी सामग्री से समन्वित यह 'वैदिक नित्यकर्मविधि' प्रकाशित करने के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा को शुभकामनाएं एंव साधुवाद।

वेदकुमारी घई।

शुभ कामना

यह पद्धति वर्तमान सार्वदेशिक धर्मार्य सभा के नियमानुसार, तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित सस्कार विधि के अनुसार निर्मित की गई है अतः प्रामाणिक है। इस विधि में क्रम बना रहता है। दैनिक यज्ञ एवं बृहद् यज्ञ दोनों इसमें विद्यमान हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू कश्मीर द्वारा इस विधि के प्रकाशन पर मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

मुनि डा० य़ोगेन्द्र कुमार शास्त्री
मन्त्री सार्वदेशिक धर्मार्य सभा
तिथि : 1–4–2012

साधुवाद

आर्य प्रतिनिधि सभा जम्मू–कश्मीर ने विक्रमी संवत् 2068 में जिन पञ्च महायज्ञों के ऋषि प्रणीत विधि–विधान को "वैदिक नित्यकर्म विधि' के नाम से प्रथम संस्करण के रूप में प्रकाशित किया था, आर्य जनता ने उसका हृदय से स्वागत किया, वह संस्करण बहुत शीघ्र ही समाप्त हो गया। आर्य प्रतिनिधि सभा ने दूसरे संस्करण की आवश्यकता को अनुभव किया और उस का प्रयास आपके हाथों में है।

प्रस्तुत पुस्तिका में 'पञ्चमहायज्ञों' के विधि विधान के साथ–साथ अन्य प्रासंगिक विषयों को भी समाविष्ट किया गया है जिससे पुस्तक अत्यन्त उपादेय बन गई है। प्रत्येक आर्य को प्रतिदिन इन यज्ञों को परिवार में नियमित रूप से करना चाहिए, यह पुस्तिका प्रत्येक आर्य के घर में रहनी चाहिए।

आर्य प्रतिनिधि सभा के माननीय प्रधान श्री राकेश चौहान इस सराहनीय प्रयास के लिए साधुवाद के पात्र हैं।

वैदिक धर्म का सन्देशवाहकः
आचार्य विद्याभानु शास्त्री

महर्षि दयानन्द सरस्वती व आर्यसमाज

"यदि महात्मा गांधी राष्ट्रपिता हैं
तो महर्षि दयानन्द सरस्वती राष्ट्रपितामह हैं"

यह वाक्य भारत के प्रथम लोकसभा अध्यक्ष श्री अनन्तशयनम् ने महर्षि दयानन्द के प्रति अपना उद्गार प्रकट करते हुए कहे थे। अनन्तशयनम् ही नहीं भारत तथा विदेशों के बहुत से उच्चकोटि के विद्वानों ने महर्षि के प्रति ऐसे उद्गार प्रकट किये है। इन में दादाभाई नौरोजी, लौह पुरूष सरदार वल्लभ भाई पटेल, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी, योगिराज अरविन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, श्रीमती एनी बीसेन्ट, हुतात्मा रामप्रसाद बिस्मिल आदि अनेक प्रमुख नाम हैं। स्वाधीनता संग्राम के योद्धा के रूप में सर्वप्रथम नाम महर्षि दयानन्द का ही आता है क्योंकि उन्होंने उस विचार को लोगों के सामने रखा। महर्षि द्वारा लिखित ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में (जो सन् 1875 में प्रकाशित हुआ) महर्षि लिखते हैं कि "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है"। महान् क्रांतिकारी वीर सावरकर, श्याम जी कृष्ण वर्मा, शहीद भगतसिंह, नेता जी सुभाष चन्द्र बोस, अशफाक उल्ला खां तथा लाला लाजपत राय जैसे हजारों सपूत महर्षि से ही प्रेरणा लेकर स्वतन्त्रता संग्राम में कूदे।

सौराष्ट्र प्रान्त के मौरवी राज्य के छोटे से गाँव टंकारा में कर्षन जी तिवाड़ी के घर, जो औदीच्य ब्राह्मण थे, फाल्गुन मास की दशमी संवत् 1881 में (सन् 1824 ई०) एक बालक ने जन्म लिया जिस का नाम मूलशंकर रखा गया। इस बालक की प्रथम शिक्षा घर में ही हुई। छोटी सी आयु में ही वेदमन्त्रों का उच्चारण कराना शुरू कर दिया था। माता–पिता ने इस बालक के लिए बहुत कुछ सोच

रखा था परन्तु विधाता ने कुछ और। शिवरात्रि पूजन की रात परिवार के सभी सदस्य शिवपूजन के लिए मंन्दिर में बैठे थे। बस इसी रात ने 14 वर्षीय बालक मूलशंकर के जीवन को बदल डाला तथा बालक मूलशंकर ने सच्चे शिव की खोज का प्रण लिया।

अन्ततः 22 वर्ष की आयु में गृह त्याग, सच्चे शिव की खोज में निकल पड़े। ब्रह्मचारी शुद्धचैतन्य के नाम से योगियों ऋषियों व आध्यात्मिक लोगों के पास जगह जगह विचरते रहे, तथा वेद, दर्शन शास्त्र, योग आदि का अध्ययन करते रहे। 24 वर्ष की आयु में स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास ग्रहण कर बरसों भटकते रहे परन्तु जिस चीज की खोज थी न मिल सकी। अन्त में 1860 ई० में वे स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के चरणों में उपस्थित हुए उन्हें अपना गुरु माना। प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द ने, जिन्हें व्याकरण का सूर्य माना जाता था, सहर्ष ही दयानन्द सरस्वती को अपना शिष्य मान लिया तथा करीब तीन वर्ष तक उन्हें वैदिक धर्म की बारीकियों को समझाया। गुरुदक्षिणा स्वरूप दयानन्द सरस्वती से उनका पूर्ण जीवन वैदिक संस्कृति के प्रचार प्रसार के लिए मांगा। जिसे दयानन्द सरस्वती ने सहर्ष स्वीकार कर गुरु–विरजानन्द से विदा ली। 1869 ई० में काशी में पौराणिक पंडितों से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ कर उन्हें धूल चटाना महर्षि के जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना थी।

सन् 1874 ई० में अलीगढ़ के कलैक्टर राजा जयकृष्ण दास ने स्वामी जी के विचारों से प्रभावित हो कर उन्हें अपने विचारों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का आग्रह किया। फलस्वरूप सत्यार्थप्रकाश लिखने का निश्चय किया। सन् 1875 में बनारस से सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण प्रकाशित करवाया। महर्षि ने लिखा कि वेद में किसी व्यक्ति, स्थान या काल का वर्णन नहीं है। वेद चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा

ऋषियों के द्वारा वेदवाणी के रूप में एक एक वेद का प्रकाश किया। वेद ईश्वर की नित्य विद्या है। ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण वेदज्ञान पूर्ण है। स्त्री और पुरुष समान रूप से वेद पढ़ने का अधिकार रखते हैं। वैदिक संस्कृति के प्रचार प्रसार का काम कभी न रुके। इसके लिए उन्होनें 10 अप्रैल सन् 1875 ई० में बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की। साथ ही यह भी कहा, कि मैं कोई नया मत–मतान्तर आरम्भ नहीं कर रहा हूँ। आर्यसमाज श्रेष्ठ व्यक्तियों का संगठन है, जो मानव मात्र का कल्याण, मनुष्य समाज से अविद्या, अन्धविश्वास, पाखण्ड, जातपात, दहेजप्रथा, बाल विवाह, भ्रष्टाचार, नारी उत्पीड़न आदि कुरीतियों को मिटाना चाहता है। स्वामी जी की सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, संस्कारविधि आदि उनके जीवन काल में केवल 66 पुस्तकें ही छप सकीं। मानव समाज के कल्याणार्थ स्वामी जी ने आर्यसमाज के सार्वभौमिक 10 नियम बनाए। जिन पर चल कर मानव जीवन सफल हो सकता है। स्वामी जी अस्वस्थ रहने लगे। सन् 1880 ई० में अपना वसीयतनामा कर परोपकारिणी सभा की स्थापना की।

स्वामी जी ने गोरक्षा, नारीशिक्षा, विधवा–विवाह तथा दलितोद्धार जैसे अनेक समाज–सुधार के कार्य किये। सन् 1883 ई० का वर्ष स्वामी जी का अन्तिम वर्ष था। जोधपुर के महाराजा विलासिता में डूबे रहते थे। स्वामी जी ने महाराजा से मिल कर उन्हें समझाने का प्रयास किया कि एक राजा को यह सब शोभा नहीं देता। यही बात महाराजा की करीबी नाचने वाली (नन्ही जान) को चुभ गई अतः उसने रसोइये जगन्नाथ से मिल कर दूध में पिसे कांच को मिला कर, स्वामी जी को विष पिलवा दिया। स्वामी जी को इस बात की अनुभूति हो गई थी। उन्होंने रसोइये को बुला कर क्षमादान किया तथा अपने पास जितने भी रुपये थे उसे दे कर कहा, यहाँ से भाग जाओ। स्वामी जी की हालत बिगड़ रही थी अतः उन्हें आबू तत्पश्चात् अजमेर ले जाया गया जहां विक्रमी संवत 1940 (30

अक्टूबर सन् 1883 को निर्वाण प्राप्त किया)। उन के अन्तिम शब्द थे "हे ईश्वर, तूने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो"

ऋषिवर तू धन्य है। आधुनिक भारत को गर्व है कि उस ने अपने पतन काल में भी तुझ जैसे ऋषि को जन्म देकर प्राचीन भारत के उत्कर्ष की झलक दिखा दी।

ऋषि को कोटि–कोटि नमन।

प्रातः काल पाठ करने के मन्त्र

ओ३म् प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे पातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना। पातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं पातः सोममुत रुद्रं हुवेम।। 1।।

ओ३म् प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता। आध्रश्चिद् यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद् यं भगं भक्षीत्याह।।2।।

ओ३म् भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः। भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम।। 3 ।।

ओ३म् उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम्।। उतोदिता मघवन्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ।। 4 ।।

ओ३म् भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम। तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह।। 5।।

1–हम प्रतिदिन (प्रातः) प्रभात बेला में (अग्निः) प्रकाश स्वरूप (इन्द्रम्) परमैश्वर्युक्त (मित्रावरूणा) सबके मित्र और (वरणीय) सब से श्रेष्ठ (अश्विना) सर्वत्र व्यापक परम प्रभु और उसकी महती शक्ति की (हवामहे) स्तुति करते हैं। (प्रातः) प्रातःकाल की शान्ति वेला में (भगम्) सबके भजनीय, सेवनीय, (पूषणम्) सब जगत् का पोषण करनेवाले, (ब्रह्मणस्पतिम्) महान् लोक–उत्पादक और (रुद्रम्) दुष्टों को दण्ड देनेवाले प्रभु की हम (हुवेम) स्तुति प्रार्थना करते हैं।

2–(प्रातः) ब्राह्ममुहूर्त में (जितम्) जयशील, (भगम्) ऐश्वर्य के दाता, (उग्रम्) तेजस्वी, (अदितेः) समस्त ब्रह्माण्ड के (पुत्रम्) पवित्र करने वाला, (यः) जो (अदितेः) विविध प्रकार से धारण करने हारा प्रभु है, उसकी (वयम्) हम लोग (हुवेम) स्तुति करते है। (यम् चित्) जिस को (आध्रः) सब ओर से धारण करने हारा (मन्यमानः) जाननेहारा, (तुरःचित्) दुष्टों को दण्ड देने हारा, (राजा) प्रकाश स्वरूप, सब का स्वामी जानते है, और (यंचित्) जिस (भगम्) भजनीय स्वरूप प्रभु का (भक्षि) मैं सेवन करता हूँ, स्तुति करता हूँ, उसी का (आह) मैं उपदेश भी करता हूं।

3–(भग) भजनीय स्वरूप प्रभो! आप सब के (प्रणेतः) उत्पादक, सत्य–व्यवहार में प्रेरक, (सत्यराधः) सत्य = अविनाशी धन मोक्षरूप ऐश्वर्य के देने हारे हो। आप (नः) हमें (इमाम्) इस (धियम्) प्रज्ञा बुद्धि को (ददत्) दीजिए, और उस बुद्धि के दान से (उदव) हमारी रक्षा कीजिए। हे (भग) परम ऐश्वर्य स्वरूप प्रभो ! (नः) हमारे लिए (गोभिः) गाय और दुधारू पशुओं और (अश्वैः) शीघ्र पहुंचाने वाले घोड़े आदि वाहनरूप पशुओं के द्वारा उत्तम राज्यश्री को (प्रजनय) प्रकट कीजिए–दीजिए! हे (भग) भजनीय प्रभो! आप की कृपा से हम लोग (नृभिः) उत्तम पुरूषों के सम्बन्ध से श्रेष्ठ एवं वीर पुरुषों वाले (प्रस्याम) होवें।

4–हे भगवान्, हम (इदानीम्) इस प्रभातवेला में (भगवन्तः) सभी प्रकार के ऐश्वर्य सुख–शान्ति से युक्त (स्याम) होवें। (उत) और (अह्नाम्) दिनों की (प्रपित्वे) प्राप्ति में अर्थात् पूर्वाह्न में (उत) और दिनों के (मध्ये) मध्य में ऐश्वर्य से युक्त होवें। (उत) और हे (मघवन्) असंख्य धनों के देने हारे प्रभो! (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) उदय काल में हम लोग (देवानाम्) देवों = श्रेष्ठ पुरूषों की (सुमतौ) कल्याणकारिणी बुद्धि में (स्याम) वर्तमान रहें। जिस से हमारा सारा दिन शुभ कल्याण युक्त बीते।

5–(भग) समस्त ऐश्वर्य के स्वामिन्! (भगवान्) आप सब प्रकार के कल्याण के देनेहारे हो, (देवाः) हे विद्वानो! हम उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की कृपा से (भगवन्तः) ऐश्वर्य युक्त एवं दाता (स्याम) होवें। हे (भग) भजनीय सेवनीय प्रभो! (तं त्वा) उस आप की (सर्वः इत्) सभी लोग (जोहवीति) स्तुति करते हैं, प्रार्थना करते हैं। हे (भग) सकल ऐश्वर्य–सम्पन्न प्रभो! (सः) वह आप (नः) हमारे (इह) इस लोक में (पुरएता) अग्रगामी, नेता, सन्मार्ग पर चलानेहारे (भव) होइए।

पञ्च महायज्ञ

महर्षि ने मानव के लिए पांच महायज्ञ करने हेतु कहे हैं जो अवश्य ही करने चाहिए :–

१. ब्रह्मयज्ञ, (सन्ध्या) २. देवयज्ञ ३. पितृयज्ञ, ४. अतिथि यज्ञ, ५. बलि– वैश्वदेव यज्ञ।

इन यज्ञों के करने का अभिप्राय यह है कि ब्रह्मयज्ञ से प्रभुभक्ति, स्वाध्याय, आत्मविश्वास और ज्ञान की वृद्धि करें। देवयज्ञ से परस्पर प्रीतिपूर्वक सहयोग से तत्त्व ज्ञान सीखें, बलिवैश्वदेव यज्ञ से अभिमान दूर करें। अतिथि यज्ञ से सेवा की भावना और पितृयज्ञ से बड़ों के प्रति सद्‌भाव व कृतज्ञता की भावना को दृढ़ करें।

भक्ति का तात्पर्य यह है कि हम उस असीम शक्ति के साथ सम्बन्ध जोड़कर अपने कर्त्तव्य के प्रति अपार बल प्राप्त करें।

1. ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या)

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पञ्च महायज्ञ विधि में लिखा है कि शरीर की अपेक्षा अधिक अन्तःकरण शुद्धि सभी को अवश्य करनी चाहिए। सन्ध्या से अन्तःकरण की शुद्धि होती है। प्रभुप्राप्ति का एक मात्र साधन सन्ध्या है।

सन्ध्या वेदमन्त्रों से ही क्यों ?

क्योंकि वेद के इन पवित्र शब्दों को परमात्मा ने उन पवित्र ऋषियों के हृदयों में शब्दार्थज्ञान के रूप में प्रकट किया है। शब्दों के द्वारा ही एक उपासक प्रभु का साक्षात् सहज रूप से कर सकता है लेकिन भक्त में सच्ची लगन हो इसलिए सन्ध्या वेदमन्त्रों से ही करें।

सन्ध्या प्रतिदिन क्यों करें ?

जैसे नवीन वस्त्र पहनने के बाद गन्दे हो जाते हैं उसी प्रकार आत्मा रूपी वस्त्र पर जीवन के व्यतीत होते होते कुछ मल आदि दोष आवरण रूप में लग जाते हैं। जैसे वस्त्रों पर पड़े मल को दूर करने हेतु साबुन, जल आदि से धोने पर मल का निवारण होता है उसी प्रकार आत्मा की मलिनता दूर करने के लिए प्रतिदिन सन्ध्या करनी आवश्यक है। कुछ प्रमादी जन सोचते हैं कि जब बूढ़े होंगे तब कर लेंगे, अभी जीवन का आनन्द लो। य लोग स्वभाव से नासमझ हैं। सन्ध्या है मनःशान्ति के साधन जुटाने हेतु उपायों की सूझ। इन्हें सन्ध्यारूपी आत्मिक भोजन का आनन्द प्राप्त करना चाहिए।

प्रतिदिन सन्ध्या करने से अन्तःकरण की निर्मलता और विचारों की शुद्धि होती है, आस्तिकता, दृढ़ता, निरभिमानता स्थिर होती है और साथ ही दीर्घायु की प्राप्ति भी होती है।

सन्ध्या का समय :– वैसे तो हर समय प्रभु की उपस्थिति को ध्यान में रखना चाहिए परन्तु विशेष रूप में प्रातः और सायम् सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सन्ध्या करनी चाहिए।

सन्ध्या का स्थान :– मनुस्मृति (2,104) में कहा है कि मनुष्य जंगल में एकान्त स्थान में जा कर जल के समीप बैठ कर सन्ध्या, अग्निहोत्रादि नित्यकर्म को करता हुआ गायत्री का ध्यान करे। आज के युग में यह प्राकृतिक परिवेश तो सम्भव नहीं परन्तु फिर भी सन्ध्या यथासम्भव एकान्त शुद्ध पवित्र स्थान पर आसन जमा कर करनी

चाहिए। यदि घर में एक स्थान विशेष नियत कर प्रतिदिन वहीं सन्ध्या की जाए तो ध्यान में सहायता मिलती है।

सन्ध्या की तैयारी :— प्रातःकाल उठ कर शौचादि से निवृत्त होकर जल से शरीर को शुद्ध करके और मन को चिन्ताओं से दूर रख कर, स्थिर आसन पर बैठ कर सर्वप्रथम 'ओ३म्' का जप मन में करना चाहिए।

सन्ध्या का लाभ

मनु महाराज का आदेश है कि सब मनुष्य एकाग्रचित हो प्रातः–सायं सन्ध्या करते रहें, क्योंकि निरन्तर सन्ध्योपासना के द्वारा ही दीर्घायु और ब्रह्मतेज को प्राप्त कर सकते हैं और सम्पूर्ण सुख को पा सकते हैं।

मन लगाने की विधि

मानव का मन अति चंचल होता है, वह धर्म कर्म में स्थिर न होकर भटकता फिरता है अतः बलपूर्वक अपनी वृत्ति उन भावों पर रखी जाये, जो मन्त्रों के शब्द समूह में गुँथे हुए हैं। कुछ काल के अभ्यास से सन्ध्या स्वभाव का अंग बन जायेगी।

मानव अपने मन के राग द्वेष, माया मोह के भावों को त्यागकर सत्याचरण से मन को शुद्ध करके सन्ध्या का आरम्भ करे।

सन्ध्या की प्रक्रिया :— 'सन्ध्यायन्ति परब्रह्म यस्यां, सन्ध्यायते वा परब्रह्म यया सा सन्ध्या'। महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में बच्चों के अध्ययन अध्यापन के प्रसङ्ग में लिखते हैं – "इस प्रकार गायत्री मन्त्र का उपदेश करके सन्ध्योपासना की जो स्नान, आचमन प्राणायाम आदि क्रिया हैं, सिखलावें।" आगे फिर लिखते हैं – "आचमन उतने जल को हथेली में लेके उस के मूल और मध्यदेश में ओठ लगाके करें कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय

तक पहुंचे, न उस से अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ी सी होती है। पश्चात् मार्जन अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़कें, उस से आलस्य दूर होता है, जो जल प्राप्त न हो तो न करे। पुनः **समन्त्रक प्राणायाम, मनसा परिक्रमण, उपस्थान** पीछे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावें।" यहां महर्षि ने सन्ध्योपासना के विभिन्न भागों की ओर संकेत कर दिया है।

सर्वप्रथम आचमन मन्त्र से आचमन आलस्य को दूर करने को किया जाता है। फिर अंगस्पर्श और अंगमार्जन के मन्त्रों द्वारा अंगों का स्पर्श कर तथा जल छिड़क कर अंगों के स्वास्थ्य तथा पवित्रता के लिए प्रार्थना की जाती है। फिर प्राणायाम द्वारा चित्त को स्थिर किया जाता है। तत्पश्चात् अघमर्षण के तीन मन्त्रों में सृष्टि और प्रलय के चक्र का वर्णन भक्त के हृदय से अहंकार और अवसाद रूप पाप को दूर कर देता है। प्रभु के प्राकृतिक नियम और उन नियमों के अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि सौरमण्ड़लों की रचना एवं क्षय, पुनः रचना एवं क्षय इस सब का वर्णन उस विराट् की महती महिमा की अनुभूति कराता है। तत्पश्चात् मनसापरिक्रमा के छः मन्त्रों का पाठ करता हुआ साधक सभी दिशाओं में परमात्मा की अनुभूति करता है। **प्रत्येक दिशा साधक की जीवनयात्रा की एक दिशा है** 'प्राचीदिक्' आगे बढ़ने की दिशा, दक्षिणादिक्, दाक्षिण्य से ऐश्वर्य प्राप्त करने की दिशा, 'प्रतीचीदिक्' संयम की दिशा, उदीचीदिक् उन्नति की दिशा, ध्रुवादिक् स्थिरता की दिशा और 'ऊर्ध्वादिक्' सर्वोच्च स्थिति पर पहुंचने की दिशा है। इस यात्रा में अनन्त गुणों वाला परमात्मा ही अधिपति है, उस के गुण जिन का वर्णन अलंकार रूप में हुआ है, रक्षक हैं उन गुणों के पाशादि के छुड़ाने वाले सहायक गुण प्रेरणा देने वाले हैं। इस यात्रा में साधक अहिंसा का संकल्प लेते हुए कहते हैं कि जो हम से द्वेष करता है और जिस से हम द्वेष करते हैं, उसे हम आप के न्याय पर छोड़ते

है या राष्ट्र की न्यायव्यवस्था पर छोड़ते हैं। मन से सभी दिशाओं की परिक्रमा करके सर्वत्र प्रभु की शक्तियों को नमन करते हुए साधक प्रभु की उस उत्तम ज्योति के निकट जा पहुंचते हैं जिस का संकेत उस की पताकाएं मार्ग में दे रही हैं। प्रकृति के विभिन्न रूपों में देवों की अद्भुत सेनाएं जिस सेनापति का शासन प्रकट कर रही हैं वही मित्र है, वरुण है, अग्नि है। साधक प्रार्थना करते हैं कि उसी ज्योतिर्मय परमेश्वर को ज्ञानचक्षुओं से देखते हुए, उसी का गुणगान सुनते और कहते हुए हम सौ वर्ष तक या उससे अधिक वर्षों तक 'अदीन' होकर जीवनयात्रा पूरी करें। जीवनयात्रा का अन्तिम लक्ष्य है प्रभु के दिव्य तेज को धारण कर उस के साथ एकाकार हो जाना। यह गायत्री मन्त्र की साधना से सम्भव है। 'प्रभु भूर्भुवः स्वः' अर्थात् सच्चिदानन्द है जबकि प्रकृति केवल भू– सत् है, आत्मा उस सविता देव के वरेण्य भर्ग को, वरणीय दिव्य तेज को ध्यान द्वारा धारण कर लेता है तो वह भी दिव्य हो जाता है। क्योंकि सविता देव की दिव्य प्रेरणाएं उस की धारणाओं को भी दिव्य बना देती हैं। जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क में आकर कोयला अग्निरूप हो जाता है उसी प्रकार 'सविता देव' के तेज को धारण कर मानव का आत्मा भी तेजोमय तथा आनन्दमय हो जाता है। सभी सन्ध्यामन्त्रों के आदि में 'ओ३म्' का उच्चारण किया जाता है। यह परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है। अवति रक्षतीति ओ३म्। कठोपनिषद् (वल्ली 2. म. 15) में कहा है कि सभी वेद, सभी तपश्चरण जिस को कहते तथा मान्यता देते हैं वही नाम ओ३म् है।

सन्ध्यामन्त्राः

आचमनमन्त्र

ओम् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्रवन्तु नः। यजु० 36.12.

व्याख्या :– सन्ध्या में यह पहला मन्त्र आचमन मन्त्र है जिसे पढ़ कर जल का आचमन किया जाता है। ब्रह्मयज्ञ का उद्देश्य शान्ति की प्राप्ति है अतः इस आध्यात्मिक उद्योग का प्रारम्भ शम्–शान्ति से ही किया गया है। मानव शरीर पंचमहाभूतों के मेल से बना है। ये पंचभूत हैं– पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश। वैसे तो शरीर का स्वास्थ्य इन पांचों तत्त्वों के ठीक अनुपात पर निर्भर करता है परन्तु शान्ति और शीतलता प्रदान करने वाला जल तत्त्व इन में विशेष महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद में कहा है कि जलों के भीतर ही सभी औषध विद्यमान हैं। तथा जल ही स्वास्थ्य का सुख देने वाले हैं। ऋग्वेद में जलों को मां की उपमा देकर कहा है कि ये मातृरूप जल हमें शुद्ध पवित्र बनाते हैं। ये दिव्य गुणों वाले जल सभी दोषों को दूर भगाते हैं। पारस्कर गृह्यसूत्र में जलों को कल्याण करने वाले, शान्ति देने वाले कहा गया है। हम सब का कर्त्तव्य है कि हम जलस्रोतों की प्रदूषण से रक्षा कर उनकी पवित्रता बनाए रखें।

इन्द्रियस्पर्शमन्त्राः

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुश्चक्षुः।
ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः।
ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे।।

अर्थ :– ओं वाक् वाक् – प्रभुकृपा से मेरी वाणी में बोलने की शक्ति हो, **ओं प्राणः प्राणः** – नासिका में प्राण और घ्राण शक्ति हो, **ओं चक्षश्चक्षुः** – आंखों में देखने की शक्ति बनी रहे, **ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्** – कानों में सुनने की शक्ति रहे, **ओं नाभिः**– नाभि में पाचन शक्ति बनी रहे, **ओं**

हृदयम – हृदय ठीक कार्य करता रहे, **ओं शिरः** – मस्तिष्क ठीक कार्य करता रहे, **ओं बाहुभ्यां यशोबलम्** – भुजाओं में यश के देने का बल बना रहे, **ओं करतलकरपृषठ** – हाथों के तल तथा पिछले भाग ठीक कार्य करते रहें। प्रभु कृपा से मेरी सभी ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां इस प्रकार कार्य करती रहें कि उन से यश और बल दोनों की प्राप्ति हो।

व्याख्या :– इस मन्त्र द्वारा जल से इन्द्रियों का स्पर्श करते हुए साधक अपनी ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता के लिए तथा कर्मेन्द्रियों में शुभ कर्म करने की क्षमता के लिए प्रभु से प्रार्थना करता है। शरीर के सभी अंग स्वस्थ रहें तथा अपना अपना कार्य इस प्रकार सुचारु ढंग से करें कि उन से यश और बल की प्राप्ति हो।

मार्जनमन्त्रः

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः।
ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः।
ओं सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

अर्थ :– **भूः** – सब का उदभवस्थान प्रभु, **शिरसि** – सिर में, पुनातु–पवित्रता करे, **भुवः** – चैतन्य प्रभु, **नेत्रयोः** – नेत्रों मं, **पुनातु** – पवित्रता दे, **स्वः** सुखस्वरूप **प्रभु, कण्ठे**–कण्ठ में, **पुनात**–पवित्रता करे, **महः**– महान् प्रभु **हृदये** – हृदय में, **पुनात** – पवित्रता दे, **जनः**–जनक प्रभु, **नाभ्यां** – नाभि में, **पुनातु** – पवित्रता दे, **तपः** – तपःस्वरूप प्रभु, पुनः – फिर, शिरसि – सिर में पुनातु – पवित्रता दे, खं ब्रह्म – आकाश की तरह व्यापक प्रभु, सर्वत्र – सभी अङ्गप्रत्यङ्ग में, **पुनातु** – पवित्रता दे।

व्याख्या :– सभी अङ्ग प्रत्यङ्गों के स्वास्थ्य की प्रार्थना के पश्चात् प्रभु से उन सब अङ्ग प्रत्यङ्गों की पवित्रता के लिए प्रार्थना की गई है।

प्राणायाममन्त्रः

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्।।

यह प्राणायाम मन्त्र मार्जनमन्त्रों का ही संक्षिप्त रूप है इसमें प्राणायाम करते हुए प्रभु के सात नामों का ध्यान किया जाता है। अन्त में तो केवल ओ३म् के उच्चारण मात्र से ही चित्त को समाहित करने का यत्न किया जाता है।

अघमर्षणमन्त्राः

ओम् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः।।1।।
ओं समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी।।2।।
ओं सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।3।।

ऋग्वेद 10, 190, 1–3

अर्थ :– अभि + इद्धात् तपसः – सब ओर से देदीप्यमान, **तपः**स्वरूप (परमात्मा) से, ऋतं – प्राकृतिक नियम, **सत्यं च** – तथा जीवों के लिए नियम, **अधि + अजायत** – प्रकट हुए। **ततः** उन नियमों से, रात्री – अन्धकारमयी प्रकृति, अजायत – पैदा हुई, **ततः** – उसके बाद, **समुद्रः** – अन्तरिक्ष में स्थित समुद्र nebula (धुन्ध), **अर्णवः** – गतिशील हुआ।

ऋ 10, 190, 1–3.

व्याख्या :– ऋग्वेद से लिए गये इन तीन मन्त्रों को अघमर्षण अर्थात् पाप का नाश करने वाला कहा गया है। इन मन्त्रों में बीजरूप से सृष्टिविज्ञान का वर्णन है जिसका मनन करने पर

परमात्मा की अनन्त असीम महिमा की अनुभूति होती है। असंख्य सौरमण्डल निरन्तर जनमते मरते रहते हैं जैसे असंख्य जीव निरन्तर जनमते मरते रहते हैं। प्रलय और सृष्टि का यह अटूट क्रम उस नियामक विधाता के नियमों के अनुसार चलता रहता है। जिस प्रकार दिन के पश्चात् रात्रि और उस के पश्चात् दिन का चक्र चलता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का चक्र निरन्तर चलता है। वह देदीप्यमान तपःस्वरूप परमात्मा प्राकृतिक नियम से सूर्य, चन्द्र, द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि की पूर्ववत् रचना करता है और तब संवत्सर अर्थात् – सैकण्ड, मिनट, घण्टा, दिवस, सप्ताह, मास, वर्ष रूप कालचक्र चलता रहता है। इस विशाल ब्रह्माण्ड में मानव कितना छोटा और कितना क्षणभङ्.गुर है, यह चिन्तन मानव को अभिमान रहित, पापरहित बनाता है।

इस सृष्ट्युत्पत्ति क्रम में प्रकाशमान तपः स्वरूप प्रभु ने एक साथ ऋत और सत्य, प्राकृतिक और सामाजिक नियम बनाए। तत्पश्चात् रात्रि और समुद्र उत्पन्न हुआ। यहां समुद्र का अर्थ जल का समुद्र नहीं अपितु Nebula है जिसे पुरुषसूक्त में विराट् तथा हिरण्यगर्भ सूक्त में हिरण्यगर्भ कहा गया है। यहां रात्रि से अभिप्राय रात नहीं क्यों कि अहोरात्राणि दिन रात का उल्लेख अगले मन्त्र में है। यहां रात्रि से तात्पर्य प्रकृति की वह अनघड़ अवस्था है जिसमें सब अन्धकारमय एकरूप है। तत्पश्चात् विकास की प्रक्रिया शुरू हुई। नेब्युला नीहारिका रूप एकरस प्रकृतितत्त्व में हलचल हुई। उस हलचल के पश्चात् काल या संवत्सर की कल्पना हुई। दिन रात आदि को बनाने के लिए प्रभु ने सूर्य और चन्द्र को बनाया और पृथिवी, द्युलोक, अन्तरिक्ष, स्वः लोक सभी पहले की तरह बनाए।

मनसापरिक्रमामन्त्राः

ओं प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽऽदित्य इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।1।

अथर्ववेद 2,27, 1

अर्थ :- **प्राची दिक्** - यह पूर्व दिशा, आगे बढ़ने की दिशा (है), **अग्निः अधिपति** :- इस के अधिपति प्रकाशस्वरूप परमात्मा तथा माता, पिता, आचार्य रूप अग्नि (हैं), **असित** : - बन्धरहित परमदेव (तथा) विषयों के बन्धन में न जकड़े जाने का गुण, **रक्षिता** - रक्षा करने वाला है, आदित्याः - सूर्य रश्मियां तथा अखण्ड ज्ञानरश्मियां, **इषवः** - प्रेरणा देने वाली हैं। **तेभ्यः नमः अधिपतिभ्यः** - उन सब अग्नि आदि अधिपतियों को हमारा नमस्कार, **नमः रक्षितृभ्यः** - असित आदि रक्षकों को हमारा नमस्कार, **नमः एभ्यः** - इन सब को हमारा नमस्कार (हो), **यः** जो **अस्मान्** - हमारे साथ, **द्वेष्टि**-द्वेष करता है च - और **यं** - जिसके साथ **वयं** - हम **द्विष्मः** - द्वेष करते हैं, **तम्** - उस को **वः** - आपकी **जम्भे** - न्याय रूपी दाढ़ में **दध्मः** - रखते हैं।

व्याख्या :- पूर्वदिशा से उदित होकर सूर्य निरन्तर आगे बढ़ता है, इसलिए उसे प्राची दिशा कहते हैं। 'मनसापरिक्रमा' का यह प्रथम मन्त्र साधक को आगे बढ़ने का उपदेश देता है। 'प्र' उपसर्ग का अर्थ है आगे और 'अंच्' धातु का अर्थ है चलना। आगे बढ़ने में प्रकाशस्वरूप प्रभु हमारे सहायक हों यह प्रार्थना साधक करता है। अग्नि का अर्थ माता पिता और आचार्य भी है जो बच्चे की ब्रह्मचर्यावस्था में उसे आगे बढ़ाते हैं। मनु ने कहा है कि पिता गार्हपत्य अग्नि है, माता दक्षिणाग्नि है तथा आचार्य आहवनीय अग्नि है। माता ही मानव की जननी है, वही सन्तान को चलना सिखाती है। यदि वह स्वयं गुणवती संस्कारयुक्त है तभी बच्चे के अन्दर उत्तम गुणों का विकास करने में सफल हो सकती है। शिशु

के भावी जीवन का विकास माता के गर्भ में और माता की गोद में मिले संस्कारों के आधार पर होता है। वही शिशु की प्रथम गुरु है। बच्चा जब कुछ बड़ा होता है तब वह पिता के व्यवहार से सीख़ता है। यदि पिता उत्तम गृहपति है तो बच्चा भी उसका अनुसरण करता हुआ अच्छा गृहपति बनेगा। तीसरा गुरु आचार्य होता है जिसे आहवनीय अग्नि कहा गया है। वही ब्रह्मचर्यावस्था में बच्चे को ज्ञान का प्रकाश देकर उसे तेजस्वी, आचारवान् तथा सुसंस्कृत बनाता है। इस प्रकार ये तीनों अग्नियां बच्चे को जीवन की राह पर आगे बढ़ाने में सहायक होती हैं।

इस प्रगति की दिशा में व्यक्ति का रक्षक होता है विषयों में न बंधने का गुण। यदि वह प्रमादवश विषयों के बन्धन में बँध जाता है तो ज्ञान या शिक्षा के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकता। उसे निरन्तर ज्ञानरश्मियों से प्रेरणा लेते रहना चाहिए तभी उन्नति की ओर अग्रसर हो सकता है। मन्त्र के अग्रिम भाग में इन सब निर्देशक प्रेरक शक्तियों को नमस्कार किया गया है। अन्त में यह कहा है कि यदि कोई दुर्जन हम सबसे द्वेष करता है और परिणाम स्वरूप हम भी उस से द्वेष करते हैं तो उसे हम प्रभु की दण्डशक्ति के अधीन करते हैं। यहां 'अस्मान्' तथा 'वयं' में बहुवचन का तथा 'यं' तथा 'तं' में एकवचन का प्रयोग विशेष द्रष्टव्य है। अथर्ववेद में यह कामना की गई है कि सभी दिशाएं मेरी मित्र बनें अर्थात् कोई भी शत्रु न हो। फिर भी समाज में यदि कोई ऐसा दुर्जन हो जो अपने स्वार्थवश सभी सज्जनों से द्वेष करे और समाज के सभी व्यक्ति भी उसे समाजहित में बाधक जान कर उसे दुष्ट समझें तो भी किसी को यह अधिकार नहीं कि कानून को हाथ में लेकर उस दुर्जन को स्वयं दण्डित करे। उसे राष्ट्राधिकरियों के हवाले कर के राष्ट्र की न्यायव्यवस्था के अधीन ही करना चाहिए। राष्ट्राधिपतियों का यह कर्त्तव्य है कि वे उसे सुधारने का प्रयत्न करें और उसका सुधार सम्भव न हो तो उसे समुचित दण्ड दें।

ओं दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः। 2।

अर्थ – **दक्षिणा दिग्** – दक्षिणदिशा – दाक्षिण्य (प्रवीणता) प्राप्त करने की दिशा (है)। **इन्द्रः अधिपतिः** – इस के अधिपति इन्द्र हैं परमैश्वर्यवान् परमात्मा तथा इन्द्रियों का स्वामी आत्मा, **तिरश्चिराजिः रक्षिता** – अलौकिक चमक वाला परमात्मा तथा पशुपक्षियों की पंक्तियां इस दाक्षिण्य की रक्षक हैं **पितर : इषवः** – पितर गण प्रेरक हैं।

व्याख्या :– किसी भी क्षेत्र में शिखर पर पहुंचने के लिए निरन्तर आगे बढ़ने और उस कार्यक्षेत्र में दक्षता, योग्यता, पूर्णता को प्राप्त करना वाञ्छनीय होता है। दाक्षिण्यप्राप्ति के साधन हैं निरन्तर अभ्यास, जितेन्द्रिय होने का गुण तथा ऐश्वर्य। आज पाश्चात्त्य देशों ने विज्ञान के क्षेत्र में जो उन्नति की है, नित नये वैज्ञानिक आविष्कारों से विश्व को चकित कर दिया है उस के पीछे प्रमुख कारण है उन के वैज्ञानिकों की दाक्षिण्य प्राप्त करने की लगन, उन की जितेन्द्रियता तथा उन राष्ट्रों द्वारा वैज्ञानिक परीक्षणों के लिए वैज्ञानिकों को दी जाने वाली सुविधाएं, अपार धन सम्पत्ति जिस का प्रयोग वे नित नये परीक्षणों में करते रहे हैं। प्राचीन भारत में वेद, दर्शन, साहित्य, व्याकरण और विज्ञान के क्षेत्रों में हमारे पूर्वजों ने भी अभूतपूर्व दाक्षिण्य प्रदर्शित किया था जिसका लोहा अभी भी विश्व मानता है।

इस दक्षता के रक्षक हैं पशु–पक्षी, जिन की दक्षता का अनुकरण कर के मानव आविष्कार करता है। चील की उड़ान से सीख कर मनुष्य ने वायुयान बनाए हैं। अपने पंखों को लगभग स्पन्दनशून्य करके बिना शब्द किए जैसे चील उड़ान भरती है वह दक्षता अभी हमारे वायुयानों को प्राप्त करनी है। मधुमक्खियों द्वारा मधु के छत्तों का निर्माण उनकी दक्षता को दिखाता है, रानी

मधुमक्खी की प्रबन्धन क्षमता दर्शनीय है। इस प्रकार विभिन्न पशुपक्षी अपने अपने क्षेत्र में पूर्ण दक्षता को प्राप्त किए हुए दिखते हैं जिन से मनुष्य बहुत कुछ सीख सकता है। हमारे पूर्वज पितर इस दक्षता प्राप्ति में हमारे लिए प्रेरक हैं। पशुपक्षियों में तो उनकी तत्तत् क्षेत्र की दक्षता नैसर्गिक होती है। गाय भैंस का बच्चा पानी में जाते ही तैरने लगता है, उसे कोई सिखाता नहीं। मछलियों को तैरना कोई सिखाता नहीं। उस कला में उनकी परिपूर्णता या दाक्षिण्य उन के पास सुरक्षित है पहले से ही, परन्तु मानव को तो उस के पितर ही सिखाते हैं, प्रेरित करते हैं।

ओं प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षिताऽन्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।।3।। अथर्ववेद 3, 27, 3

अर्थ – **प्रतीची दिग्** – पश्चिम दिशा प्रत्याहार (प्रति अञ्च–वापिस लौटना) की दिशा है, वरुणःअधिपतिः – इस दिशा के अधिपति हैं पाशों वाले तथा पाशों से छुड़ाने वाले वरुण परमात्मा तथा वरणीय गुणों वाले शिक्षक, पृदाकुः रक्षिता – सब भोग्य पदार्थों को देने वाली पृथिवी रक्षा करने वाली है, अन्नम् इषवः – सब अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रेरणा देने वाली है।

व्याख्या :– आगे बढ़ता हुआ मानव जब दाक्षिण्य अर्थात् निपुणता से ऐश्वर्ययुक्त हो जाता है, प्रकृति पर विजय प्राप्त कर के सुख सुविधाओं के अम्बार लगा लेता है तब प्रतीची दिशा उसे वापिस लौटने का सन्देश देती है कि विषय वासनाओं में मत फंस जाओ। इस दिशा के अधिपति वरुण हैं (सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास पैरा 23) में वृञ् वरणे पर ईप्सायाम् से उनन् प्रत्यय से वरुण शब्द की सिद्धि बता कर कहा है जो सब आत्मयोगी विद्वान् मुक्ति की इच्छा करने वालों से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर वरुण संज्ञक हैं जो नियम में रखते हैं। पालन करने वाली तथा सब

भोग्य पदार्थ देने वाली पृदाकु पृथिवी (पृ–पालना, भरना, दा–देना, कः–पृथिवी) रक्षा करने वाली है। पृथिवी सहनशीलता का पाठ पढ़ाती है। किसान भूमि में बीज बोता है तो भूमि में अन्न दान करता है। भूमि को दिया गया प्रत्येक दाना सैंकड़ों दाने उत्पन्न करता है। वैसे ही मानव–समाजरूपी भूमि को दिया गया दान भी बहुत उत्पादक होना चाहिए जिस से समाज में व्यक्ति परिवार, समाज और राष्ट्र का कल्याण हो। चाहे वह क्षेत्र विद्या का हो या स्वास्थ्य का, सदाचार साधना का हो या वैज्ञानिक आविष्कार का, उस से समाज में सत्य, शिव और सुन्दर की ही वृद्धि हो। पर देते हुए अभिमान न हो।

अन्न प्रेरणा देते हैं कि संयम से उपभोग करना ही सुखकर है। संयम का त्याग अन्तत : दुःखकर होता है। तब भोग्य पदार्थों को हम नहीं भोगते वे ही हमें खा लेते हैं। "भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः'। अन्न शब्द अद् भक्षणे" धातु से बना है। अनाज, फल सब्जियां आदि सभी खाद्य पदार्थ अन्न हैं। पृथिवी ने हमारी उदरपूर्ति के लिए असंख्य खाद्य पदार्थ दिये हैं जिन्हें हम संयमपूर्वक खाते हैं तो वे हमारा पोषण करते हैं पर यदि असंयमपूर्वक खाते हैं तो हमारे दुःख का कारण बनते हैं। आयुर्वेद में कहा है– प्रश्न– कोऽरुक् कोऽरुक् कोऽरुक् ? उत्तर–ऋतभुक् हितभुक् मितभुक्। प्रश्न– नीरोग कौन है ? उत्तर – ऋतहितमितभोजी। ऐश्वर्ययुक्त होने पर प्रायः मानव अपने को नाना पाशों में जकड़ लेता है। ये पाश कुछ उत्तम होते हैं। (जैसे मस्तिष्क में यह भ्रान्ति कि मैंने यह धन अपने बल से कमाया है, यह मेरा है, मैं ही इसे देने वाला दानी हूं आदि 2) कुछ मध्यम होते हैं (हृदय में निरन्तर भय कि इस ऐश्वर्य को कोई छीन न लें) कुछ अधम (मैं इसे कामवासना तृप्त करने में खर्च कर लूं यह भोगेच्छा) इन तीनों प्रकार के पाशों से परमात्मा वरुण ही छुड़ा सकते हैं। ऋक् 1.24.15, यजुः . 12.12, तथा अथर्व. 7.83.3 में वरुण परमात्मा से यही प्रार्थना की गई है कि

हमारे तीनों प्रकार के पाशों को खोल दो ताकि हम आपके व्रत में रहते हुए अनागस् होकर, पापरहित होकर बन्धनरहित हो जाएं।

ओम् उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।। 4।। अथर्ववेद 3,27,4

अर्थ :– **उदीची दिक्** – उत्तर दिशा ऊपर उठने की, उन्नति की दिशा है, **सोमः अधिपतिः** – इस का अधिपति प्रभु सोम है, सौम्यता का गुण है, **स्वजः रक्षिता** – स्वयम्भू परमात्मा तथा अच्छी गति, क्रियाशीलता का गुण, गति, नेतृत्व का गुण रक्षक है (सु = अच्छा, अज्– ले जाना, नेतृत्व करना), **अशनिः** – विद्युत् तथा अग्नि की ज्वालाएं, **इषवः** – प्रेरणा देने वाली हैं।

व्याख्या :– उदीची उन्नति की दिशा है। उदीची शब्द उत् = ऊपर, अञ्च् = गति से बना है अर्थात् ऊपर उठने की, उन्नति की दिशा। स्वजः शब्द दो तरह से बना है। एक स्व और जः से अर्थात् स्वयं उत्पन्न स्वयम्भू परमात्मा, दूसरा है सु– अच्छा, अज– गति क्रियाशीलता अर्थात् निरन्तर क्रियाशीलता, अज– ले जाना अर्थात् अच्छा नेतृत्व देने का गुण।

सोम – अध्यात्म अर्थ में सोम शान्ति का धाम परमात्मा है। आधिभौतिक अर्थ में सोम वीर्य है, जीवनीशक्ति है।

सोम का अर्थ चन्द्रमा भी है। सोम एक औषधि भी है। जो आलस्य में रत नहीं, जो जागते रहते हैं, क्रियाशील रहते हैं सोम प्रभु उन्हीं की सहायता करते हैं, उनसे मित्रता करते हैं – जो जागता है उस के प्रति सोम कहता है – मैं तुम्हारे सखा रूप में तुम्हारे साथ हूं। प्रभु उन्हीं का साथ देते हैं जो स्वयं क्रियाशील होते हैं। जीवनशक्ति भी उन्हीं का साथ देती है जो क्रियाशील होते हैं। निरन्तर आगे बढ़ते हुए, सब प्रकार का दाक्षिण्य प्राप्त कर

ऐश्वर्यशाली होने पर भी अपने को संयम में रखते हुए जब मानव सोम प्रभु को ही स्वामी मानता है, स्वयं निरभिमानी और सौम्य बना रहता है तभी उस की उन्नति होती है। अपने द्वारा अर्जित धन दौलत पर घमण्ड करके निरंकुश हुआ मानव अवनति के मार्ग पर चल पड़ता है। जो ऐश्वर्ययुक्त होकर भी सौम्य रहता है, वही सब का प्रिय बनता है तथा उन्नति करता है। उसमें क्रियाशीलता तथा बढ़िया नेतृत्व देने का गुण उसे और ऊपर उठाते हैं। आकाश में चमकती हुई बिजली की रेखाएं उसे प्रेरणा देती हैं। जैसे बिजली चमकती है तो अन्धकार, बादल छिन्न भिन्न हो जाते हैं उसी प्रकार हम विवेक का सहारा लेकर ऊपर उठें।

ओं ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।5।। अथर्ववेद 3, 27, 5

अर्थ– ध्रुवा दिक् – निचली दिशा ध्रुवा दिशा स्थिरता की दिशा है। प्रत्येक भूमि अन्तरङ्ग ध्रुवा दिशा है। **विष्णुः अधिपतिः** – सब में व्याप्त विष्णु भगवान् तथा सब को संगठित रखने का गुण इस दिशा का स्वामी है, कल्माषग्रीवः रक्षिता – विविध नाम रूपों के ज्ञान को उत्पन्न कर अपने कण्ठ में धारण करने वाला प्रभु, विविध ज्ञान विज्ञान से युक्त होने का गुण इस का रक्षक है, **वीरुध : इषवः** – नीचे से ऊपर उठती हुई और फैलती हुई लताएं वनस्पतियां प्रेरणा देने वाली है।

व्याख्या :– सफलता की सीढ़ियां चढ़ने के पश्चात् उस उन्नत अवस्था को स्थिर बनाए रखना भी आवश्यक होता है। इस स्थिरता का अधिपति सब में व्याप्त रहने वाला विष्णु भगवान् है। जो व्यक्ति भगवान् की विष्णुशक्ति को याद रखता है अर्थात् सब को संगठित रखता है केवल अपनी उन्नति में नहीं अपितु सब की

उन्नति में विश्वास रखता है सब को सहयोग देता है और सब से सहयोग लेता है उस की उन्नति स्थिर रहती है। कल्माषग्रीव होने से अर्थात् विविध ज्ञान विज्ञान को अपने कण्ठ में बनाए रखने से इस स्थिरता की रक्षा होती है ज्ञान के क्षेत्र में भी एकाङ्गी या नितान्त सीमित क्षेत्र का ज्ञान लाभकर नहीं होता। उन्हीं की सफलता या उन्नति स्थिर रहती है जो अपने क्षेत्र में विभिन्न विषयों का व्यापक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, कल्माषग्रीव बनते हैं। एक राजनीति के विद्यार्थी के लिए इतिहास, अर्थशास्त्र का ज्ञान भी आवश्यक होता है। इस विषय में धरती से निकल कर फैलती लतायें हमें प्रेरणा देती हैं कि अपनी प्रगति का आधार हम व्यापक बनाएं।

ओम् ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरिधिपतिः शिवत्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।। 6।। अथर्व० 3.27, 6

अर्थ – ऊर्ध्वादिक् – ऊर्ध्वादिक् ऊपरली दिशा सर्वोच्च स्थिति की दिशा है। **बृहस्पतिः अधिपतिः** – वह बड़ों से बड़ा भगवान् इस दिशा स्वामी है, विद्या को पाकर पूर्ण ज्ञानी बना हुआ मनुष्य भी इस का अधिपति बनता है, **शिवत्रः रक्षिता** – शुद्धचरित्रवान् होने का गुण इस का रक्षक है, **वर्षम् इषवः** – वर्षा की बरसती जलधाराएं प्रेरणा देती हैं।

व्याख्या :– आत्मज्ञान को प्राप्त कर के मानव इस सर्वोच्च स्थिति को पा लेता है। महान् प्रभु ही अधिपति है। गीता में कहा है – 'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'–पवित्र करने वाले साधनों में ज्ञान ही सर्वोत्तम साधन है। ज्ञान से पवित्र हुआ सात्त्विक प्राणी इस सर्वोच्च स्थिति में पहुंच कर आनन्दमय हो जाता है। वर्षा की फुहारें जैसे धरती को हरा भरा कर देती हैं उसी

प्रकार आनन्दसुधा की वर्षा उसे आनन्दित कर देती है। अब संसार के भोग्यपदार्थ उसे आकर्षित नहीं करते। काम, क्रोध आदि उसे विचलित नहीं करते। मानवजीवन की उच्चतम स्थिति में पहुंचा वह मनुष्य प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि उसकी वह सात्त्विक उच्च स्थिति बरकरार रहे।

बृहस्पति का अर्थ है महान् स्वामी (बृहत् = महान्, पति = स्वामी) जो सब भुवनों का अर्थात् लोक लोकान्तरों का स्वामी है वह बृहस्पति है। मैत्रायणी संहिता में कहा है जिस ने ब्रह्म ज्ञान को पा लिया है वह पूर्णज्ञानी भी ब्रह्मणस्पति या बृहस्पति कहलाता है। उस ने अन्य देवों को ज्ञान दिया इस लिए देवताओं का गुरु भी बृहस्पति है। ज्ञान से शुद्ध हुआ पवित्र चरित्र व्यक्ति इस सर्वोच्च स्थिति का प्रेरक है। यजुर्वेद 36.2 में यही कहा है कि मेरे नेत्रों, हृदय तथा मन में जो कोई दोष है, छिद्र है उसे भुवनों का स्वामी बृहस्पति दूर कर दे।

तभी व्यक्ति शुद्ध 'श्वित्र' बनेगा। सत्यार्थप्रकाश (समुल्लास 1, पैरा 30) में बृह बृहि वृद्धौ इन धातुओं से ब्रह्म शब्द की व्युत्पति बता कर कहा है जो सब से बड़ा अनन्तबल युक्त परमात्मा है उस ब्रह्म को नमस्कार है।

सत्यार्थप्रकाश (समुल्लास 1, पैरा 26) में है – 'योबृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः', जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े बड़े आकाशादि ब्रह्माण्ड़ों का स्वामी है वह परमेश्वर बृहस्पति है।

ओम् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।। 1 ।।

यजु० 35.14

अर्थ–वयं– हम, **उत**–उत्कृष्ट, **तमसः** – अन्धकार से प्रकृति से, **परि** – परे, **उत्तरम** – उत्कृष्टतर, **स्वः** आत्मस्वरूप को,

पश्यन्तः— देखते हुए, **देवत्रा** – देवों में, **उत्तमम्** – उत्कृष्टतम, **ज्योतिः** – ज्योतिस्वरूप, **देवं** – देव, **सूर्यम्** – सूर्य को, सर्वप्रेरक प्रकाशमान, परमेश्वर को, **अगन्म** प्राप्त हुए हैं

व्याख्या :– हम सब ऊपर उठते हुए अन्धकारमयी जड़ प्रकृति से परे उत्कृष्टतर आत्मतत्त्व को देखते हुए फिर उस से आगे उत्कष्टतम परमात्मज्योति को प्राप्त हुए हैं। प्रकृति ज्ञानशून्य होने के कारण तम है परन्तु निकृष्ट नहीं, उसे भी जानना, उस पर विजय प्राप्त करना ऊपर उठना है। प्रकृति से ऊपर उठकर उत्कृष्टतर आत्मतत्त्व को पहचानना, आत्मज्ञान प्राप्त करना मानव का उद्देश्य है। प्रकृति तो साधन है, साध्य नहीं, प्रकृति में ही लीन हो कर जो लोग सन्तुष्ट हो जाते हैं वे ऊपर नहीं उठ सकते, चेतनतत्त्व आत्मतत्त्व को जानना होता है जो उत्कृष्टतर है। आत्मतत्त्व को जानकर अन्तिम लक्ष्य तो उत्कृष्टतम, सच्चिदानन्दरूप, सर्वप्रेरक, सर्वप्रकाश्क परमात्मा तक पहुंचना है। प्रकृति के सभी पदार्थ, सृष्टि के सभी जीव, उसी परमसत्ता का संकेत दे रहे है इस बात की चर्चा अगले मन्त्र में की गई है।

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। यह तीन गुणों तम, रज, सत् से युक्त है। हमारा शरीर प्रकृति का अंश है इसलिए यह शरीर (देह, बुद्धि, मन और चित्त का समूह) भी त्रिगुणात्मक है। प्रकृतिजन्य यह शरीर प्राकृत पदार्थों के प्रति आकृष्ट होता हुआ उन्हीं में सुख ढूंढता है। आत्मा तीन गुणों से प्रभावित होती है परन्तु उस का अपना स्वरूप त्रिगुणातीत है। परमात्मा सविता देव त्रिगुणात्मिका प्रकृति में व्याप्त है पर तीनों गुणों से नितान्त अप्रभावित रहता है। आत्मा जब तक तीनों गुणों से प्रभावित रहती है तब तक दुःख सुख भोगती है। तीन गुणों वाली प्रकृति के तीन प्रकार के भोग हैं – तामस भोग, राजस भोग, सात्त्विक भोग। 'तामस' भोगों से दुःख होता है, 'राजस' भोगों से सुख भी होता है दुःख भी होता है, 'सात्त्विक' भोगों से सुख होता है परन्तु परमानन्द तो प्रकृति और

उसके तीनों गुणों से मुक्त हो कर आत्मा में अवस्थित होकर आनन्दस्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करने पर होता है जो तीनों गुणों से परे है। उस अवस्था में न सुख है न दुःख केवल आनन्द होता है। उस अवस्था में पहुंच कर साधक सब प्रकार के भोगों (चाहे वे तामस हों या राजस या सात्त्विक) से ऊपर उठ जाता है। उसे कोई भोग आकृष्ट नहीं करता। उसकी सब धारणाएं (देखने, सुनने, छूने, आदि की शक्तियां) दिव्य हो जाती हैं।

ओम् उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्।।2।। **यजु० 33.31**

अर्थ–त्यं – उस, जातवेदसम् – सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सूर्य देवं–प्रेरक सर्वप्रकाशक देव को, उ–ही, विश्वाय – सब के प्रति, दृशे – दर्शाने के लिए, केतवाः– ध्वजाएं, उत् वहन्ति – ऊपर फहरा रही हैं।

व्याख्या :– 'विद् धातु' का अर्थ जानना, प्राप्त करना, विद्यमान होना है। जो सभी उत्पन्न वस्तुओं और जीवों को जानता है वह 'जातवेदाः' है, जो सब के लिए प्राप्तव्य है, जो सब में व्यापक है, वह प्रभु 'जातवेदाः' है। उस परमदेव को सभी को दर्शाने के लिए ही पर्वत, नदियां, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ध्वजाएं बन कर फहर रहे हैं। ध्वजा किसी के शासन की प्रतीक होती है जिसे देखकर जान लिया जाता है कि वहां का शासक कौन है। परमात्मा का शासन बड़ा सुन्दर सुव्यवस्थित है। उसकी ओर ले जाने वाले मार्ग पर पताकाएं फहरा रही हैं जो उस तक पहुंचने का रास्ता दिखा रही हैं। हम उन पताकाओं के माध्यम से उस मार्ग को पहचानें और क्रमशः ऊपर उठकर आत्मतत्त्व को जानें। प्रकृति तो भोग्य है, जीव भोक्ता है। भोग्य पदार्थों की सार्थकता इसी में है कि उन को साधन बना कर भोक्ता अपना परिष्कार करे, सब जीवों के कल्याण के लिए प्रकृतिरूप साधनों का प्रयोग करे। अन्त में तीसरी सीढ़ी ब्रह्मज्ञान की है जिस के द्वारा उस उत्तम ज्योति ब्रह्म का

साक्षात्कार किया जाता है। वेद में प्रकृति या संसार को मिथ्या नहीं कहा है। प्रकृति भी सत् है, वह साध्य नहीं साधन है। ये कलकल बहती नदियां, गहरे सागर, ऊंचे पर्वत, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र सब उसी परम सत्ता की ओर संकेत करती हुई पताकाएं हैं, जो उस का पता बता रही हैं, पर हम प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर उसी में लीन होने से परम लक्ष्य तक नहीं पहुंच सकते। प्रकृति से ऊपर उठकर (उत्तरम् स्वः) साधक को उत्कृष्टतर आत्मा को पहचानना है और फिर आत्मावस्थित होकर उत्कृष्टतम (ज्योतिरुत्तमम्) ज्योतिस्वरूप परमात्मदेव का साक्षात्कार करना है।

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षं सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ।।3।। यजु० 7.42

अर्थ–देवानां – देवों (अग्नि, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि) की, **चित्रं** – अद्भुत, अनीकम् – सेना, बल, **उत् अगात्** – उदित हुई है। (यह) **मित्रस्य** – मित्र को, **वरुणस्य** – वरुण को (और) अग्नेः अग्नि को, **चक्षुः** दिखाने वाली है। (इसने) **द्यावापृथिवी** – द्युलोक, पृथिवीलोक (तथा) **अन्तरिक्षम्** अन्तरिक्षलोक को, **आ अप्रा** – व्याप्त किया हुआ है। **सूर्यः** यह सब का प्रेरक, गति देने वाला, उत्पादक ब्रह्म, जगतः – जंगम, **तस्थुषश्च** और स्थावर जगत् का **आत्मा** – केन्द्र है। **स्वाहा** – यह शुभ वचन है।

व्याख्या :– सन्ध्या के माध्यम से प्रभुभक्ति में मग्न हुआ भक्त जब प्रभु के शासन को दिखाती हुई पताकाओं को देखता है और प्रभुदर्शन के लिए आगे बढ़ता है तो प्रकृति के विभिन्न रूपों में उसे देवों की अद्भुत सेना दिखाई देती है। देवों की यह अद्भुत सेना बता रही है कि इस सेना का सेनापति इस व्यूह रचना के पीछे छिपा है। द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक में वही सर्वत्र व्याप्त है। सविता जड़ और चेतन की आत्मा है। वह प्रभु मित्र है,

वरुण है और अग्नि है ऋग्वेद 1.164.43 तथा अथर्ववेद 9.15.28 में मन्त्र है कि उस एक प्रभु को ज्ञानी जन विभिन्न नामों (जैसे इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि) से पुकारते हैं। वह वरणीय गुणों से युक्त होने के कारण, वरण करने योग्य होने के कारण वरुण है, वह अग्नि के समान पावक, प्रकाशक है, आगे ले जाता है, इसलिए अग्नि है, वह सब का हित सम्पादन करने वाला, दुःख सुख में साथ देने वाला सच्चा मित्र होने से तथा सूर्यवत् प्रकाशक होने के कारण मित्र है। सांसारिक मित्र तो स्वार्थ सिद्ध न होने पर शत्रु बन जाते हैं परन्तु परमात्मा ही एक ऐसा मित्र है जो सम्पूर्ण भावना से अपनाए जाने पर भक्त को कभी नहीं छोड़ता। स्वाहा शब्द के अनेक अर्थ महर्षि दयानन्द ने निरुक्त (8–20) के आधार पर दिए हैं।

ओं तच्चक्षुर्देवहितम् पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।। 4 ।।

यजु० 36.24

अर्थ–तत् – वह, देवहितं – देवों का परम हित करने वाला, **शुक्रम्** – शुभ्र तेजोमय (ब्रह्म, सूर्य) **पुरस्तात्** – सामने, **उत् चरत्** – उदय होता हुआ, **चक्षुः** – मार्गदर्शक (है)। **शरदः शतम्** – सौ साल तक, **पश्येम** – हम उसे देखें, (उस की कृपा से) **शरदः शतम्** – सौ साल तक, **जीवेम** हम जीते रहें, **शरदः शतम** – सौ साल तक, **श्रृणुयाम** – हम सुनते रहें, **शरदः शतम** – सौ साल तक, **प्रब्रवाम** – हम बोलते रहें, **शरदः शतम्** – सौ साल तक, **अदीनाः स्याम** – अदीन रहें, च – और **शतात् शरदः** – सौ सालों से, **भूयः** – अधिक (इसी प्रकार अच्छी हालत में रहें)।

व्याख्या :– इस मन्त्र का अध्यात्मपरक अर्थ तो यह है कि हम देवों, विद्वानों के परम हितकारक तेजोमय मार्गदर्शक ब्रह्म को

अपने ज्ञाननेत्रों से सौ वर्षों तक देखते रहें, सौ वर्षों तक उन ब्रह्म की कृपा से जीते रहें, उनका गुणगान सुनते रहें, उन का गुणगान करते रहें, अधिक भी जीएं तो ऐसे ही जीएं।

सूर्यपरक अर्थ में इस मन्त्र का विनियोग उपनयन संस्कार में भी है जब ब्रह्मचारियों को सूर्यदर्शन कराया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में सूर्य को वीर्य का देवता (रेतोदेवता) कहा गया है। ब्रह्मचारी यह प्रार्थना करते हैं कि वह जो सामने उदय होता हुआ ज्योतिर्मय ब्रह्मचर्य मार्ग का उपदेशक सूर्य है, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए हम इसे सौ वर्ष तक देखते रहें, हम सौ वर्ष तक जीएं, सौ वर्ष तक हमारी श्रवण शक्ति, प्रवचन शक्ति बनी रहे हम सौ वर्षों तक अदीन हो कर जीएं। अधिक जीएं तो भी इसी प्रकार स्वस्थ और अदीन हो कर जीएं।

ओं भूर्भुवः स्व। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। यजुर्वेद 3, 35

अर्थ–भूः – सत्, **भुवः** चित्, **स्वः** आनन्द (वह प्रभु सच्चिदानन्द स्वरूप है) **देवस्य सवितुः** – देव सविता के, **तत्** – उस **वरेण्यम्** – वरणीय, **भर्गः**– तेज को, **धीमहि** – ध्यान द्वारा हम धारण करें, **यः**– जो (ऐसे सविता देव हैं वे) **नः** हमारी, **धियः** – बुद्धियों को, धारणाओं को **प्रचोदयात्** – सुप्रेरित करें।

व्याख्या :– प्रकृति केवल सत् है, आत्मा सत् और चित् है, परमात्मा सत्, चित् और आनन्द है। सत् का अर्थ है होना, अस्तित्व। प्रकृति का अस्तित्व है किन्तु वह जड़ है उस में चेतना नहीं है आनन्द भी नहीं है। जीवात्मा सत् है उस की सत्ता है और वह चित् भी है, उस में चेतनता है, परमात्मा सत्, चित् होने के साथ–साथ आनन्द भी है। आनन्द की प्राप्ति उस रच्चिदानन्द के साथ मिलने से ही होती है। जड़ प्रकृति से तो अस्थायी सुख ही मिल पाता है। सविता देव का तेज वरणीय है। हम उसे ध्यान द्वारा

धारण कर सकते हैं। वही सविता हमारी बुद्धियों को हमारी धारणाओं को प्रेरित करे ताकि हमारी धारणाएं उस के दिव्य तेज से युक्त होकर दिव्य हो जाएं। जैसे अग्नि की भट्टी में गया कोयला भी अग्निरूप हो जाता है। वैसे ही सविता का दिव्य तेज पा कर हमारी धारणाएं, हमारा देखना, सुनना सूंघना सब दिव्यता से युक्त हो जाते हैं। जैसे जड़ प्रकृति से बने हमारे शरीर के रग रग में चेतना व्याप जाती है वैसे ही सच्चिदानन्द प्रभु के सान्निध्य में जीवात्मा को अन्दर बाहर सर्वत्र आनन्द की अनुभूति होती है। हम प्रकाशमान ज्योतिस्वरूप प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी बुद्धियों को, धारणाओं को सुप्रेरित करते रहें। सामाजिक क्षेत्र में भी जो ज्योतिर्मय पथ हमारे पूर्वज ऋषियों ने बुद्धि पूर्वक बनाए हैं उन की रक्षा करते रहें।

हे ईश्वर! दयानिधे! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।

अर्थ – हे ईश्वर दयानिधे, आप की कृपा से इस जपोपासनादि् कर्म से हमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि शीघ्र प्राप्त हो।

यह वेदमन्त्र न होकर लौकिक वाक्य है। इसमें पुरुषार्थचतुष्टय की प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य बताया गया है।

नमस्कारमन्त्र

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च।। यजु० 16, 41

अर्थ–शम्भवाय च – शान्तिस्वरूप के लिए, **नमः** नमन (हैं) **मयोभवाय च** – आनन्दस्वरूप के लिए; **नमः** – नमन (है) **शम् कराय च** – शान्ति करने वाले के लिए **नमः** – नमन, **मयस्कराय च** – आनन्द देने वाले के लिए, **नमः** – नमन **शिवाय शिवतराय**

च – मंगलकारी और अधिकाधिक मंगलकारी प्रभु के लिए, **नमः** – नमन (है)

व्याख्या :– शम् का अर्थ शान्ति है तथा भू–होना से बने भव का अर्थ है उत्पत्ति स्थान स्रोत। वह प्रभु शान्तिस्वरूप है, शान्ति का स्रोत है। वह केवल स्वयं शान्तिस्वरूप या शान्ति का स्रोत ही नहीं वह भक्तों को भी शान्ति प्रदान करता है, इसलिए वह शम्भव होने के साथ साथ शङ्कर भी है। मयः का अर्थ है सुख, आनन्द। वह प्रभु स्वयं सुखस्वरूप है आनन्दस्वरूप है अतः मयोभव है। वह दूसरों को भी आनन्द देता है, अतः मयस्कर है। वह शिव है, कल्याणकारी है, वह शिवतर है, अधिकाधिक कल्याणकारी है। उस शान्तिस्वरूप, आनन्दस्वरूप, कल्याणकारी प्रभु को हमारा नमन है। प्रभु के सान्निध्य में हमें जो शान्ति प्राप्त हुई, आनन्द प्राप्त हुआ उस के लिए उस दाता को नमन है। 'शिवु कल्याणे' धातु से इस शिव शब्द की सिद्धि होती है।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शन्तिः।

****

(वैदिक प्रार्थना)

हे सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वाधार सर्वान्तर्यामिन् परमेश्वर! आप अनन्त काल से अपने उपकारों की वर्षा किये जाते हो। प्राणिमात्र की सम्पूर्ण कामनाओं को तुम्हीं प्रतिक्षण पूर्ण करते हो। हमारे लिये जो शुभ तथा हितकर है, उसे तुम बिना मांगे ही हमारी झोलियों में भरते रहते हो। आपके आंचल में अविचल शान्ति तथा आनन्द का वास है। आपकी चरणशरण की शीतल छाया में परम तृप्ति है। शाश्वत सुख की उपलब्धि है।

हे सुखों के दाता, दुःखों के हर्त्ता जगत्पिता परमेश्वर! हमारे हृदय में सच्ची श्रद्धा और विश्वास हो। हम आपकी अमृतमयी गोद में बैठने के अधिकारी बनें। अन्तःकरण को मलिन बनाने वाली स्वार्थ तथा संकीर्णता की सब क्षुद्र भावनाओं से हम ऊँचे उठें। काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि कुटिल भावनाओं तथा मैली वासनाओं को हम दूर करें। प्रभो! यह तभी सम्भव है जब आपकी करुणामयी दृष्टि तथा आपका वरद हस्त हम सब बालकों के सिर पर हो।

हे परम पावन प्रभो! हम में सात्त्विक वृत्तियां जागृत हों। क्षमा, सरलता, स्थिरता, निर्भयता, अहंकारशून्यता इत्यादि शुभ भावनाएं हमारी सम्पत्ति हों। हमारा हृदय दया तथा सहानुभूति से भरा हो। हमारी वाणी में मिठास हो और दृष्टि में प्यार हो। विद्या और ज्ञान में हम परिपूर्ण हों।

हे प्रभो! अपने आशीर्वादों की वर्षा करो। आपके पावन चरणों में हमारा जीवन अर्पित हो। इसे अपनी सेवा में लेकर हमें कृतार्थ करें।

* * * * * * *

देवयज्ञ

अथ–ईश्वर–स्तुति–प्रार्थना–उपासना मन्त्राः

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव।।1।।

हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए। जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वह सब हमको प्राप्त कीजिये।

ओ३म् हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।2।।

जो स्वप्रकाशस्वरुप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं। जो उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का प्रसिद्ध स्वामी एक ही चेतनस्वरूप था। जो सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व वर्तमान था वह इस भूमि और सूर्यादि को धारण कर रहा है, हम लोग उस सुखस्वरूप, शुद्ध परमात्मा के लिए ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से विशेष भक्ति किया करें ।।2।।

ओ३म् य आत्मा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः। यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। 3।।

जो आत्मज्ञान का दाता, शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा, जिसकी सब विद्वान् लोग उपासना करते हैं और जिसका प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन् और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं। जिसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस सुखस्वरूप सकलज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति

के लिये आत्मा और अन्तःकरण से भक्ति अर्थात् उस की आज्ञा पालन में नित्य तत्पर रहें।।3।।

ओ३म् यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। 4 ।।

जो प्राणवाले और अप्राणिरूप जगत् का अपने अनन्त महिमा से एक ही विराजमान राजा है। जो इस मनुष्यादि और गौ आदि प्राणियों के शरीर की रचना करता है हम लोग उस सुखस्वरूप सकलैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा के लिये अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा पालन में समर्पित करें।।4।।

ओ३म् येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः। यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।5।।

जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाववाले सूर्य आदि और भूमि को धारण किया है। जिस जगदीश्वर ने सुख को और दुःख–रहित मोक्ष को धारण किया है। जो आकाश में सब लोक लोकान्तरों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस सुखदायक कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।।5।।

ओ३म् प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।6।।

हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मा! आपसे भिन्न दूसरा कोई उन इन सब उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को नहीं तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। जिस जिस पदार्थ की कामनावाले हो के हम लोग भक्ति करें, आपका आश्रय लेवें और वाञ्छा करें

उस उसकी कामना हमारी सिद्ध होवे जिससे हम लोग धनैश्वर्यों के स्वामी होवें।।6।।

ओ३म् स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।।7।।

हे मनुष्यो! वह परमात्मा अपने लोगों का भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् का उत्पादक, वह सब कामों का पूर्ण करनेहारा, सम्पूर्ण लोक मात्र और नाम, स्थान, जन्मों को जानता है और जिस सांसारिक सुख–दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्षस्वरूप धारण करनेहारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके विद्वान् लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। हम लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें।। 7।।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।। 8।।

हे स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करनेहारे सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं। कृपा करके हम लोगों को विज्ञान व राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान और उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हमसे कुटिलतायुक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिये। इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें।। 8।।

* * * * * * *

(अथ स्वस्तिवाचनम्)

ओ३म्। अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्।।1।।

मैं ज्ञानस्वरूप, पूर्व से ही जगत् को धारण करने वाले, यज्ञ के प्रकाशक, सदैव पूजनीय, सब अभीष्ट पदार्थों के दाता और सब सुन्दर पदार्थों के स्वामी प्रभु की स्तुति करता हूँ।

ओ३म् स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये।।2।।

हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप, पुत्र के लिए पिता के समान हमारे कल्याण के लिए आसानी से पास जाने योग्य हूजिए और हमें अपने साथ जोड़िए।

ओ३म् स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना।।3।।

हे ईश्वर!अध्यापक और उपदेशक तथा जल और वायु हमारे लिए कल्याणकारी हों। अखण्डित पृथिवी देवी हम पुरुषार्थी पुरुषों के लिए कल्याण देने वाली हो। पुष्टिकारक मेघ–विद्या हमारे लिए कल्याणकारी हो। अन्तरिक्ष और पृथिवी विज्ञान के प्रकाशक होकर हमारा कल्याण करें।

ओ३म् स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः।।4।।

हे परमेश्वर! शान्ति के लिए हम वायु विद्या का प्रचार और उपदेश करें। शान्तियुक्त ऐश्वर्य देने वाले चन्द्रमा की हम स्तुति करते हैं। यह चन्द्रमा औषधि आदि रस का उत्पादक होने के

कारण संसार की रक्षा करने वाला है। कल्याणमय कर्मों के रक्षक और सबकी चिन्ता करने वाले हे प्रभु! हम आपका आश्रय लेते हैं। हम लोगों के बीच वेदविद्या को जानने वाले विद्वान् पैदा हों।

ओ३म् विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः।।5।।

विद्वान् लोग हमें सुखदायक हों। सबका स्वामी वह प्रभु हमें सर्वदा सद्बुद्धि प्रदान करें। विद्वान् लोग अपनी प्रकाशमय बुद्धि और कलाओं से हमें दुर्गुणों से बचाएँ। वह प्रभु, जो दुष्टों को दण्ड देने वाला है, हमें पापों से दूर रखे।

ओ३म् स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि।।6।।

हे सर्वज्ञ परमेश्वर! हमारा कल्याण करो! वायु और विद्युत् हमारा कल्याण करें। शुभ धनादि–सम्पन्न मार्ग हमारे लिए कल्याणकारी हों।

**ओ३म् स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता सं गमेमहि।।7।।**

हे ईश्वर! जीवन मार्ग में कल्याण की भावना से हम विचरें, जैसे सूर्य और चन्द्रमा सबके कल्याण के लिए विचरण करते हैं। पुनःपुनः प्राणिमात्र के प्रति सहायक, किसी को दुःख न देते हुए तथा ज्ञानसम्पन्न होकर हम सब मिल कर चलें।

ओ३म् ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।8।।

जो यज्ञ के अधिकारी और विद्वानों से भी पूजनीय हैं, मननशील पुरुष के साथ संगति करने वाले, जीवन्मुक्त और सत्य–ज्ञानी हैं। वे हमें अत्यन्त कीर्तिमय विद्या प्रदान करें। आप

सब विद्वान् कल्याणकारी पदार्थों से सब काल में हमारी रक्षा किया करें।

ओ३म् येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ।। 9।।

जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिए सबका निर्माण करने वाली पृथिवी माधुर्य युक्त दुग्धादि पदार्थ देती है और अखण्डनीय मेघों से व्याप्त अन्तरिक्ष लोक सुन्दर जल आदि देता है, अत्यन्त बल वाले और शुभ कर्मों द्वारा वृष्टि यज्ञ का आह्वान करने वाले उन आदित्य ब्रह्मचारियों को कल्याण के लिए प्राप्त कराएं।

ओ३म् नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ।। 10।।

क्रियाशील जगत् के जो द्रष्टा, आलस्य रहित, सबके लिए पूजनीय विद्वान् लोग जो महान् अमृतपद को प्राप्त हो चुके हैं अर्थात् जीवन्मुक्त हैं, सुन्दर प्रकाशमय शरीर रूपी रथ से युक्त हैं, जिनकी बुद्धि को कोई तिरस्कृत नहीं कर सकता, ऐसे निष्पाप आदित्य ब्रह्मचारी जो कि अन्तरिक्ष लोक में ऊंचे स्थान को ज्ञान द्वारा उपलब्ध करते हैं, वे हमारे कल्याण के लिए हों।

ओ३म् सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये।। 11।।

अपने तेज से अच्छी प्रकार विराजमान, ज्ञान आदि से वृद्ध जो विद्वान् लोग यज्ञ को प्राप्त होते हैं और जो किसी से भी अपीड़ित श्रेष्ठ द्युलोकवत् प्रकाशमान बड़े–बड़े स्थानों में निवास करते हैं, उन श्रेष्ठ आदित्य ब्रह्मचारियों की, अखण्डनीय

आत्मा–विद्यारूपी अच्छी स्तुतियों के साथ, कल्याण के लिए हम सेवा करें।

ओ३म् को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद् यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये।। 12।।

हे समस्त विद्वानो! तुम जो स्तुति करते हो, उस वेदोक्त स्तुति को कौन बनाता है ? हे अनेक जन्म वाले मननशील विद्वानो! तुम सबके बीच में कौन ऐसे यज्ञ को अलंकृत करता है जो तुम्हारे मन से पाप को हटाकर कल्याण के लिए प्रेरित करता है ? इसका विचार करो।

ओ३म् येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त्त सुपथा स्वस्तये।। 13।।

जिन व्यक्तियों के लिए मननशील विद्वान् सात होताओं (सात ज्ञानेन्द्रियां) (दो आंख, दो कान, दो नाक, एक रसना) से मुख्य यज्ञ करता है। वे आदित्य ब्रह्मचारी भयरहित सुख को प्राप्त हों और हमारे कल्याण के लिए शोभन वैदिक मार्गों को समुचित ढंग से उपलब्ध कराएं।

ओ३म् य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये।। 14।।

स्थावर और जंगम सृष्टि के स्वामी ईश्वर को जानने वाले विद्वान् अच्छे ज्ञान के साथ सबके अग्रगामी होते हैं। श्रेष्ठ पुरुष हमें किये हुए और न किये हुए पापों से बचाकर हमारा कल्याण करें।

ओ३म् भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये।।15।।

हे ईश्वर! पाप से छूटने में जिसका आह्वान प्रशंसायुक्त हो, ऐसे शक्तिशाली विद्वान् को हम अपने आन्तरिक और बाह्य संग्रामों में अपनी रक्षा के लिए बुलाते हैं। अनन्त और महान् लाभ के लिए अग्नि, प्राण और जलवायु , सेवनीय विद्याओं और अन्तरिक्ष और पृथिवी की विद्या तथा वायु का हम कल्याण के लिए सेवन करें।

ओ३म् सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये।।16।।

इस संसार रूपी सागर से पार उतरने के लिए हम ऐसी ज्ञानरूपी दिव्य नौका पर चढ़ें जो रक्षा करने वाली, अनन्त सीमा वाली, छिद्र आदि से रहित सुख देने वाली, अखण्डित, अच्छी प्रकार निर्मित, तथा सुन्दर साधन युक्त है। इस ज्ञान और भक्ति रूपी दृढ़ नौका पर चढ़कर हम दिव्यलोक को प्राप्त करें।

ओ३म् विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम श्रृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये।। 17।।

हे पूजनीय विद्वानों! हमारी रक्षा के लिए आप उपदेश किया करें और पीड़ा देने वाली दुर्गति से हमारी रक्षा करें। हे विद्वानो! आप हमारी स्तुति सुनें और इस सच्ची देवतुल्य स्तुति की सहायता से शत्रुओं से हम रक्षा प्राप्त करें। सुख के लिए हम आपका आह्वान करते रहें।

ओ३म् अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आ रे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये।।8।।

हे विद्वानों! हमें रोगादि से पृथक् करो। सब मनुष्यों की नास्तिक बुद्धि को दूर करो। हम लोभ से रहित हों। पाप की इच्छा

करने वाली शत्रु की दृष्टि भावना को दूर करो। द्वेष करने वाले हमसे दूर रहें। हमें सुख प्रदान करो।

ओ३म् अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये।। 19 ।।

श्रेष्ठ पुरूषों की उत्तम नीतियाँ पापों से हटाकर सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने वाली होती हैं। ऐसे सत्पुरूष विपरीत स्थिति से न घबराकर सदा धर्मानुष्ठान में रत रहते हैं। उनके पुत्र–पौत्रादि अपने पूवजों की कीर्ति को बढ़ाने वाले होते हैं।

ओ३म् यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्ते ।। 20।।

हे मितभाषी विद्वान् लोगो! अन्न के लाभ के लिए जिस रमणीय गमन साधन की रक्षा करते हो और रखे हुए धन के कारण संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो, इन्द्र को विजय और ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले, प्रातःकाल से ही गमन करने वाले और किसी को पीड़ा न देने वाले उसी रथ पर हम कल्याण के लिए चढ़े।

ओ३म् स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन।।21।।

हे मितभाषी विद्वान् लोगो! हमारे लिए जल सहित और जलरहित रास्ते कल्याणकारी हों। जलों द्वारा हमारा कल्याण हो। सब प्रकार के आयुधों से युक्त शत्रुओं को पराजित करने वाली सेना कल्याण करने वाली हो। हमारी सन्तानों के उत्पत्ति स्थानों में कल्याण हो। गौ आदि धन के लिए कल्याण करो।

ओ३म् स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति। सा नो अमा सो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपाः।।22।।

इस पृथिवी पर चलने वालों के लिए मार्ग कल्याणकारी हों। यह पृथिवी सुन्दर अन्नादि धनवाली हो। सेवा के भाव से किये कर्मों से यह सुलभ हो। यह हमारे गृह की रक्षा करे। वनादि देशों में यह हमारी रक्षा करती हो। विद्वानों से रक्षित यह पृथिवी हमारे लिए अच्छे स्थान वाली हो।

ओ३म् इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशँसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि।।23।।

हे ईश्वर! हम अन्नादि इष्ट पदार्थों के लिए और बलादि के लिए तुम्हारा आश्रय लेते हैं। प्रभु कहते हैं – हे जीवो! तुम वायु सदृश पराक्रम करने वाले हो। सब जगत् के उत्पादक यज्ञरूप श्रेष्ठ कर्म के लिए तुम सबको सम्बद्ध करो। इस यज्ञ द्वारा अपने ऐश्वर्य के भाग को बढ़ाओ। यज्ञ – संपादन के लिए न मारने योग्य बछड़ों सहित गौएँ प्राप्त करो जो व्याधि – विशेषों से रहित और यक्ष्मा–तपेदिक आदि बड़े रोगों से शून्य हों। तुम लोगों बीच जो चोरी आदि दुष्ट युक्त हों, वे उन गौओं के मालिक न बनें और अन्य पापी भी उन पर अधिकार न करें। ऐसा यत्न करो जिससे चिरकाल तक रहने वाली गौएँ निर्दुष्ट गौ– रक्षक के पास बनी रहें। प्रभो! यजमान के पशुओं की रक्षा करो।

ओ३म् आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः। देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ।। 24।।

हे ईश्वर! हमको स्तुति के योग्य संकल्प प्राप्त हों। सब ओर से किसी से बाधा न प्राप्त करने वाले सर्वोत्तम दुःखनाशक विद्वान् लोग हमारी सभा में हों और सर्वदा हमारी वृद्धि के लिए ही

हों। इन विद्वानों को प्रतिदिन प्रमादशून्य और हमारी रक्षा करने वाले बनाओ।

ओ३म् देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो निवर्त्तताम्। देवानां सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे।। 25।।

हे भगवान्! सरल आचरण वाले विद्वानों की कल्याणमयी श्रेष्ठ बुद्धि हमें प्राप्त हो और विद्यादि पदार्थों का दान हमें प्राप्त हो। हम श्रेष्ठ पुरुषों को मित्र भाव से प्राप्त हों। ये दिव्य पुरुष हमारी आयु को दीर्घकाल पर्यन्त जीने के लिए बनाएँ।

ओ३म् तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये।। 26।।

ऐश्वर्यमय चर–अचर जगत् के स्वामी और बुद्धि से सबको आनन्दित करने वाले परमात्मा का अपनी रक्षा के लिए हम आह्वान करते हैं। वह पुष्टिकर्त्ता धनों की वृद्धि करे। सामान्य और विशेष रूप से रक्षक और पालक परमात्मा हमें कल्याण प्रदान करे।

ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। 27।।

बहुत कीर्त्ति तथा परमैश्वर्ययुक्त ईश्वर हमारे लिए कल्याण प्रदान करे। पुष्टि कराने वाला सर्वज्ञाता ईश्वर हमारे लिए कल्याण की वर्षा करे। तीक्ष्ण, तेजस्वी तथा दुःखहर्ता ईश्वर हमारा कल्याण करे। महान् पदार्थों का स्वामी वह ईश्वर हमारे लिए कल्याणकारी हो।

ओ३म् भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः।। 28।।

सत्संग के योग्य विद्वान् लोगो! हम कानों से अच्छा ही सुनें, नेत्रों से अच्छी वस्तुओं को देखें। प्रभु की स्तुति करने वाले हम लोग पुष्ट शरीरों से उस आयु को प्राप्त करें जो विद्वानों को कल्याण के लिए प्राप्त होती है।

ओ३म् अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषि।।29।।

हे प्रकाशरूप परमात्मन्! कीर्त्ति और विशिष्ट तेज से प्रशंसित हुए आप दिव्य पुरुषों को उत्तम पदार्थ देने को प्राप्त होइये। सब पदार्थो के ग्रहण करने वाले आप का हम यज्ञादि शुभ कार्य में सदा स्मरण करें। आप हमारे हृदयों में स्थिर हों।

ओ३म् त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषे जने।। ३०।।

अर्थ : हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! आप सब श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन कराने वाले हों। आप दिव्य गुणों से युक्त मननशील प्राणी में प्रतिष्ठित होते हैं।

ओ३म् ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।। 31।।

तीन गुण – सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण–तथा सात ग्रह (अथवा) 21 तत्त्व–अर्थात् 5 महाभूत, 5 ज्ञानेन्द्रियां, 5 प्राण, 5 कर्मेन्द्रियां और अन्तःकरण ये सब चराचरात्मक वस्तुओं का पोषण करते हुए परिवर्त्तित होते रहते हैं। हे वेदवाणी के पति! आज मेरे शरीर में उन्हीं का बल प्रदान कीजिए।

इति स्वस्तिवाचनम्

* * * * * * *

अथ शान्तिकरणम्

ओ३म् शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः, शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः, शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ।।1।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी कृपा से विद्युत् और अग्नि अपने रक्षा रूपी कर्मों के द्वारा हमारे लिए सुखकारी होवें। भोग्य पदार्थों के देने वाले विद्युत् और वायु हमारे लिए सुखकारी होवें। विद्युत् और सोम रोगों के शमन और भयों को दूर करने वाले साधनों की प्राप्ति के लिए सुखकारी होवें। विद्युत् और मेघ ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति कराने वाले कृषि आदि कर्मों में सुखकारी होवें।

ओ३म् शन्नो भगः शमु नः शंसो अस्तु, शन्नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः। शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः, शन्नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु।।2।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी कृपा से सेवन करने योग्य प्रातः कालीन सूर्य, शिक्षा, प्रशंसा, अति मेधावी पुरुष, अनेकविध ऐश्वर्य, सत्यकर्मा, सुनियन्ता अध्यक्ष की शिक्षा, दण्डनीति और प्रसिद्ध न्यायाधीश हमारे लिए सुखकारी हों।

ओ३म् शन्नो धाता शमु धर्त्ता नो अस्तु, शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः।। शं रोदसी बृहती शन्नो अद्रिः, शन्नो देवानां सुहवानि सन्तु।।3।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी दया से वायु, सूर्य, जलों के द्वारा विस्तृत आकाश, महती द्यावापृथिवी, पर्वत वा मेघ तथा विद्वानों के सुन्दर–सुन्दर उपदेश सब हमारे लिए सुखकारी हों।

ओ३म् शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु, शन्नो मित्रा वरुणावश्विना शम्। शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु, शन्न इषिरो अभिवातु वातः।।4।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी कृपा से प्रकाश ही जिसका बल है ऐसा पार्थिव अग्नि, प्राण–अपान, सूर्य चन्द्र, उत्तम कर्म करने वालों के उत्तम आचरण हमारे लिए सुखकारी हों और गतिशील वायु हमारे लिए चारों तरफ से सुख को बहा लाए।

ओ३म् शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ, शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु। शन्न ओषधीर्वनिनो भवन्तु, शन्नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।।5।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी कृपा से उषा काल के प्रकाश और अन्धकार, अन्तरिक्ष दर्शन, औषधियां और वृक्ष वनस्पतियां तथा लोक–लोकान्तरों का रक्षक सूर्य हमारे लिए सुखकारी होवें।

ओ३म् शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु, शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।। शन्नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः, शं नस्त्वष्टाग्नाभिरिह श्रृणोतु।।6।।

भावार्थ— हे प्रभो! सूर्य की जीवनदायनी किरणें हमारे लिए सुखकारी हों, बारहों मासों से युक्त स्तुति योग्य संवत्सर, अभिलाषा पूर्ण करने वाला जीवात्मा प्राणों के साथ सुखकारी हो। संसार के रचने हारे को हम अपनी तोतली वाणी से पुकारते हैं और उससे याचना करते हैं कि वह हमारी प्रार्थना को सुने।

ओ३म् शन्नः सोमो भवतु ब्रह्म शन्नः शन्नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।। शन्नः स्वरूणां मितयो भवन्तु, शन्नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः।।7।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी कृपा से औषधियों के राजा सोम का रस, वेद के मन्त्र, सोम–रस निकालने के प्रस्तर, यज्ञ, यज्ञ में

खड़े किए गए यज्ञस्तम्भ, औषधियां, यज्ञ की वेदि—ये सब हमारे लिए सुखकारी हों।

ओ३म् शन्नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु, शन्नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु। शन्नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु, शन्नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।। 8 ।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी कृपा से हमारे लिए सुखकारी सूर्य उदय होवे, चारों दिशाओं में पर्वत, नदियां तथा जल सभी हमारे लिए सुखकारी होवें।

ओ३म् शन्नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः, शन्नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः। शन्नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु, शन्नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ।। 9 ।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी कृपा से अन्नादि भोग्य पदार्थों द्वारा पृथिवी, स्तुति—योग्य प्राण, सूर्य, मेघ, द्युलोक और वायु हमारे लिए सुखकारी होवें।

ओ३म् शन्नो देवः सविता त्रायमाणः, शन्नो भवन्तूषसो विभातीः। शन्नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः, शन्नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ।। 10 ।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी कृपा से अन्धकार तथा कृमियों से रक्षा करने वाला, दिव्य शक्ति वाला उदय होता हुआ सूर्य, प्रचुर प्रकाश वाली प्रभात वेला में बरसने वाला मेघ और लहलहाते खेतों का मालिक किसान—ये सब प्रजाओं के लिए सुखकारी हों।

ओ३म् शन्नो देवा विश्वदेवा भवन्तु, शं सरस्वती सह धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः, शन्नो दिव्याः पार्थिवाः शन्नो अप्याः ।। 11 ।।

भावार्थ— हे प्रभो! आपकी कृपा से दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले साधारण जन, विविध प्रकार के दान वाले दाता जन, एवं

द्युलोक पृथिवी लोक और अन्तरिक्ष लोक से सम्बद्ध दैवी शक्तियां हमारे लिए कल्याणकारी हों।

ओ३म् शन्नः सत्यस्य पतयो भवन्तु, शन्नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः। शन्नः ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शन्नो भवन्तु पितरो हवेषु।। 12।।

भावार्थ– हे प्रभो! आपकी कृपा से वेद विद्या के पालक, उत्तम साधनों वाले चतुर शिल्पी जन, अश्वादि वाहन, दुग्धादि पदार्थों के देने वाले गौ आदि पशु तथा आवश्यकता पड़ने पर पुकारे जाने पर माता–पिता के समान पालना करने वाले सहायक जन, हमारे लिए सुखकारी हों।

ओ३म् शन्नो अज एकापाद् देवो अस्तु, शन्नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः। शन्नो अपां नपात् पेरुरस्तु, शन्नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः।। 13।।

भावार्थ– हे प्रभो! आपकी कृपा से दिव्य गुणों वाला सूर्य, मेघ, समुद्र, पालन करने हारा विद्युत् तथा दिव्य शक्तियों से रक्षित पृथिवी, हमारे लिए सुखकारी हों।

ओ३म् इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नोऽस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।। 14।।

भावार्थ– हे प्रभो! जो प्रदीप्त सूर्य संसार को प्रकाश दे रहा है वह दोपायों तथा चौपायों के लिए सुख का देने वाला हो।

ओ३म् शन्नो वातः पवतां, शन्नस्तपतु सूर्यः। शन्नःकनिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु।। 15।।

भावार्थ– हे प्रभो! आपकी कृपा से वायु हमारे लिए सुख को लाये, सूर्य हमारे लिए सुख का ताप दे, गड़गड़ाता हुआ दिव्य मेघ हमारे लिए सुख बरसाये।

ओ३म् अहानि शं भवन्तु नः, शं रात्री प्रतिधीयताम्। शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः, शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या। शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ, शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः।। 16।।

भावार्थ– हे प्रभो! आपकी असीम कृपा से हमारे दिन सुख से बीतें, रातें भी सुख से बीतें, विद्युत् और अग्नि, प्राण और अपान, विद्युत् और मेघ तथा सूर्य और चन्द्र हमारे लिए शान्तिदायक हों।

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय, आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः।। 17।।

भावार्थ– हे प्रभो! जिस प्रकार जल शरीर के मलों को दूर करता तथा शरीर को शान्ति पहुंचाता है, इसी प्रकार हम आप के अन्दर रस का पान करके अपने अन्तः करण में स्थित मल को दूर कर शारीरिक शान्ति की तरह आत्मिक शान्ति प्राप्त करें।

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षम् शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शांतिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वम् शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।। 18।।

भावार्थ– हे प्रभो! आपकी कृपा से द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक, पृथिवी लोक, जल, ओषधियां, वनस्पतियां, यह विशाल विश्व, संसार का सब कुछ, उसका कोना– कोना शान्ति का ही स्वर आलापे। मुझे सब जगह से शान्ति प्राप्त हो जो निरन्तर बढ़ती ही रहे।

ओ३म् तच्चक्षुर्देवहितं, पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं, जीवेम शरदः शतं, श्रृणुयाम शरदः शतं, प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं, भूयश्च शरदः शतात्।। 19।।

भावार्थ– हे प्रभो! आप सब के मार्ग दर्शक हैं, विद्वानों के परमहितकारी हैं, आप तेजोमय शक्ति हैं – हम सौ वर्ष तक आप

को ज्ञान चक्षु से देखते रहें, सौ वर्ष तक आपके उपदेश को सुनते रहें और दूसरों को सुनाते रहें, सौ वर्ष तक तथा इस से भी अधिक समय तक आपकी कृपा से हम स्वस्थ जीवन बितायें और जन्म जन्मान्तर तक आपका यश देखते सुनते रहें।

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं, तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।20।।

भावार्थ— हे प्रभो! मेरा दिव्य शक्ति वाला जो मन जागते हुए व सोते हुए का दूर दूर तक जाता है अर्थात् चिन्तन करता है, जो सभी ज्ञान—साधक इन्द्रियों का प्रधान ज्योति प्रकाशक है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला होवे।

ओ३म् येन कर्माण्यपसो मनीषिणो, यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।21।।

भावार्थ— हे प्रभो! जिस मन की सहायता से मनस्वी धीर पुरुष विशेष ज्ञानपूर्वक किये जाने वाले यज्ञों में कर्त्तव्य अर्थात् करने योग्य कर्मों को करते हैं, जो शरीरों के भीतर अपूर्व पूजनीय रूप में विद्यमान है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला होवे।

ओ३म् यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च, यज्जोतिरन्तरमृतम्प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते, तन्मे मनः शिव संकल्प मस्तु।।22।।

भावार्थ— हे प्रभो! जो मेरा मन ज्ञान का साधन और चेतना का आधार है, जो विकट परिस्थितियों में भी मुझे धैर्य देता है, जो अमर ज्योति के रूप में हमारे अन्तः करण में बैठा हुआ है और जिसके बिना हम अंगुलि तक भी नहीं हिला सकते, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला होवे।

ओ३म् येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्, परिगृहीतममृतेन सर्वम्।

येन यज्ञस्तायते सप्तहोता, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।23।।

भावार्थ– हे प्रभो! जिस मन ने अपनी चिन्तन शक्ति से भूत, वर्तमान तथा भविष्यत् को मानो मुट्ठी में पकड़ रखा है, अर्थात् जो तीनों कालों का चिन्तन कर सकता है और जिस मन की सहायता से शरीर–रूपी यज्ञ में आंखें, नाक, कान और मुख "होता" बन कर जीवन यज्ञ चला रहे हैं वह मेरा मन शुभ विचारों वाला हो।

ओ३म् यस्मिन्नृचः साम यजूंषि, यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां, तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।24।।

भावार्थ– हे प्रभो! जिस मन में रथनाभि में अरों की तरह ऋग्, साम, यजुर्वेद पिरोये हुए हैं, जिसमें हर प्राणी का चिन्तन समाया हुआ है, वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभ विचारों वाला होवे।

ओ३म् सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्, नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।।25।।

भावार्थ– हे प्रभो! जैसे उत्तम कुशल सारथि घोड़ों को लगामों की सहायता से जिधर चाहता है घुमा ले जाता है, इसी प्रकार हृदय में बैठा हुआ यह गतिशील, चंचल, शक्तिमान् मन हमें भरमाये फिरता है। कृपा करो, भगवान्! ताकि वह मन शुभ संस्कारों वाला हो जिस से वह हमें कुपथ में बरबस भटकने के स्थान में सुपथ से ले जावे।

ओ३म् स नः पवस्व शं गवे, शं जनाय शमर्वते।
शं राजन्नोषधिभ्यः।।26।।

भावार्थ– हे परम दीप्तिवान् प्रभो! आप हमारे मन को पवित्र करो ताकि हमारे मन में सबके कल्याण की भावना उदय

हो। हम हृदय से जन साधारण, पशु मात्र तथा वनस्पति मात्र के कल्याण की भावना करते रहें। हे प्रभो! आप सबका कल्याण करें।

ओ३म् अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।। 27।।

भावार्थ– हे प्रभो! आपकी कृपा से अन्तरिक्ष आदि लोकों से हमें किसी प्रकार का भय न हो। हमें सामने से, पीछे से, नीचे से व चारों दिशाओं से कहीं से भी किसी प्रकार का भय न हो।

ओ३म् अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः, सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।28।।

भावार्थ– हे प्रभो! आपकी दया से मित्र, शत्रु, उदासीन, ज्ञात और अज्ञात सभी पुरुषों से हमें अभय प्राप्त होवे। ये हमारा अकल्याण न कर सकें। रात्रि के अन्धकार तथा दिन के प्रकाश से हमें अभय प्राप्त होवे। सभी दिशाएं हमारी मित्र बन जावें और सब ओर से हमारा कल्याण होवे।

इति शान्तिकरणम्

* * * * * * *

हवन यज्ञ क्यों करें?

हवन का स्वास्थ्य रक्षा के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। अंग्रेजी भाषा में स्वास्थ्य–रक्षा के लिए जिस शब्द का प्रयोग होता है–वह है 'हाईजीन'। हमें तो यह अपने 'हवन' शब्द का ही अपभ्रंश प्रतीत होता है। हवन और हाईजीन दोनों का प्रयोजन भी एक है। हवन से दुर्गन्ध का नाश और सुगन्ध का विस्तार होता है। इसी सुगन्ध द्वारा वायु में आक्सीजन तथा ओज़ान जैसी प्राणप्रद वायु का संचार होने लगता है। हवन की यह विशेषता है कि इससे न केवल दुर्गन्ध का नाश ही होता है अपितु सुगन्ध का विस्तार भी होता है। प्रत्येक नासिका इसकी साक्षी है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने हवन पर खोज करके इसे आश्चर्यजनक पाया। विदेशों में आर्यसमाज के साथ–साथ हवन–यज्ञ भी पहुंचा एवं अनुसंधान कर रहे हैं। आप को यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि अमेरिका जैसे सुदूर देश में अग्निहोत्र यूनिवर्सिटी स्थापित हो चुकी है। फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी तथा कतिपय अन्य देशों में एवं भारत में भी यज्ञ के परीक्षण किये हैं एवं अखण्ड यज्ञों के परिणामों को अत्युत्तम अनुभव कर रहे हैं। अपने देश में पण्डित वीरसेन जी वेदश्रमी, डॉ. कुन्दन लाल अग्निहोत्री, महात्मा प्रभुआश्रित जी, स्वामी विज्ञनानन्द सरस्वती जी तथा अन्य अनेक महानुभावों ने हवन यज्ञ की वैज्ञानिकता पर खोज की है। भारत के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा आर्यसमाज के सुविख्यात संन्यासी डॉ. सत्यप्रकाश जी ने वैानिक दृष्टिकोण से यज्ञ पर एक पुस्तक लिखी है। उन्होंने सिद्ध किया है कि ब्रह्माण्डीय वायुमण्डल के शुद्धिकरण का एकमात्र उपाय हवन यज्ञ ही है। यज्ञ से ही द्यौः शान्ति होगी, यज्ञ से ही अन्तरिक्ष शान्ति होगी तथा पृथ्वी शान्ति होगी और सर्वशान्ति होगी तभी शान्तिः की अनुभूति होगी और अपने में भी शान्ति होगी–अन्यथा नहीं।

यज्ञ से पूर्व आवश्यक निर्देश

1. यज्ञ करने का स्थान स्वच्छ व पवित्र हो।
2. यजमान तन मन से पवित्र हों।
3. यज्ञवेदी पर बैठते समय अपने पास चमड़े की वस्तु जैसे बैल्ट पर्स, घड़ी का चमड़े का पट्टा आदि ना रखें।
4. अपना मोबाइल सुप्त (ही) रखें।
5. व्यवस्थानुसार बैठें, साथ में बैठे व्यक्ति का आपस में स्पर्श न हो।
6. आपस में बातचीत न करें केवल ईश्वर का ध्यान करें।
7. मन्त्रोच्चारण पुरोहित जी के साथ स्वर मिलाकर करें। आगे–पीछे नहीं।
8. यजमान पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठें।
9. सामग्री दायें हाथ की मध्यमा व अनामिका अंगुलि तथा अंगूठे को मिला कर अर्पित करें, फैकें नहीं।
10. सामग्री बढ़िया हो। समिधा स्वच्छ व कीड़ा लगी न हो।
11. बाहर गिरी हुई सामग्री को यज्ञकुंड में न डालें।
12. आचमन कर के हाथ को सिर पर न ले जायें।
13. स्विष्टकृत् आहुति केवल भात अथवा घी से करें।
14. यज्ञवेदी पर बैठने के पश्चात् न किसी का अभिवादन करें, यदि कोई करे भी तो उसका उत्तर देने की आवश्यकता नहीं।

* * * * * * *

(2) देवयज्ञ (अग्निहोत्रम्)

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्तिः— ओमावसोः सदने सीद।

ऋत्विगुक्ति :— ओ३म् सीदामि।

यजमानोक्तिः—ओम् तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे.......
..............................वैवस्तमन्वन्तरे..................................
अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे............ऽमुक........
..................संवत्सरे.................अयने............................ऋतौ.
........मासे............पक्षे...............तिथौ.................दिवसे........
............नक्षत्रे.................लग्ने...................मुहूर्ते..............अद्य.
.... अहमुक्त .... कर्मकरणाय भवन्तं वृणे।

ऋत्विगुक्तिः— वृतोऽस्मि।

— आचमन —

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा।

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा।

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।

भाव है : अमृत ही **मेरा आधार** (उपस्तरण = बिछौना) और रक्षक है (अपिधान = आच्छादन) है। पभो मेरे जीवन में मुझे सत्य यश तथा श्री की प्राप्ति हो। यहां प्रथम स्थान सत्य को दिया है अर्थात्

सत्य कर्म करते हुए ही मुझे यश की उपलब्धि हो तथा लक्ष्मी भी प्राप्त हो।

तत्पश्चात् : इन मन्त्रों से अंगों का स्पर्श करते हुए इन के सबल और पवित्र होने के लिए प्रार्थना की जाती है :–

ओ३म् वाङ् म आस्येऽस्तु
ओ३म् नसोर्मे प्राणो अस्तु
ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु
ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु
ओ३म् बाहोर्मे बलमस्तु
ओ३म् ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु
ओ३म् अरिष्टानि मे ऽङ्गा नि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु।

अग्न्याधान

निम्न लिखित मन्त्र से घृत का दीपक जलायें

ओं भूर्भुव : स्वः। – गोभिल गृ. 1/1/11

अर्थ :– (ओम्) हे सर्व रक्षक प्रभो! आप (भूः) सबके जनक, प्राण स्वरुप (भुवः) दुःखों को दूर करने वाले (स्वः) सुख स्वरुप हैं।

दीपक जलाने के पश्चात् दीपक से कपूर को किसी पात्र में रखकर जलायें और निम्नलिखित मन्त्र से कुण्ड में स्थापित करें = आधान करें।

ओ३म भूर्भुवः स्वद्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठऽग्निमन्नादमन्नाद्याय दधे।

भूः भुवः स्वः = हे सत् चित् आनन्दरूप प्रभो

द्यौ : इव भूम्ना = (मैं) द्यौ के समान विभूति से युक्त होकर
पृथिवी इव वरिम्णा = पृथिवी के समान विशालता, उदारता, से युक्त होकर।
देवयजनि पृथिवि = जहां देव यज्ञ करते हैं, ऐसी हे पृथिवि।
तस्याः ते पृष्ठे = तेरी उस पीठ पर
अन्नादम् = अन्नभक्षक अग्नि को
अन्नाद्याय = अन्नभक्षणार्थ
आदधे = प्रस्थापित करता/करती हूं।

ओ३म उदबुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि तवमिष्टापूर्ते सं सृजेथामयं च।।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत।।

यजु.15.54

अग्ने = हे भौतिक अग्नि! हे आत्माग्नि!
उद् बुध्यस्व = तुम उदबुद्ध होवो
प्रतिजागृहि = प्रतिजागरित होवो
अयं च = और यह (अग्नि, आत्माग्नि)
इष्टापूर्ते = इष्ट और पूर्त का , इष्ट की आपूर्ति के लिए
अध्युत्तरस्मिन् = उत्तरोत्तर बढ़ने के साधन इस
सधस्थे = सहस्थान, सराय, देह, संसार, में
विश्वे देवा = सभी विद्वान्, सभी दिव्य गुण
यजमानश्च = और यजमान
सीदत = बैठें।

व्याख्या :– यज्ञ में अग्न्याधान किया जाता है। यज्ञ शब्द यज् धातु से बना है जिस के तीन अर्थ हैं देव पूजा, संगतिकरण और दान। यज्ञ में हम भौतिक अग्नि को आदर भाव से स्थापित करते हैं, मन्त्रोचारण द्वारा उस से संगतिकरण करते हैं तथा उस में हवि घृत सामग्री का दान करते हैं। इसी प्रकार अध्यात्म की

दृष्टि से आत्मा अग्नि है, मानव शरीर यज्ञवेदी है, सधस्थ है जहां सब समय पर बैठते हैं। इन्द्रियां समिधाएं हैं, भावनाएं तथा विचार और कर्म हवि हैं। समिधाएं शुद्ध पवित्र हों, घी सामग्री भी शुद्ध पवित्र हो तभी यज्ञ सफल होता है।

जिस प्रकार भौतिक अग्नि को जगाया जाता है उसी प्रकार आत्माग्नि को जगाने की, आत्मबोध की आवश्यकता है। आत्मबोध होगा तभी हम दुरितों से दूर रहेंगे। आज हम केवल किताबी ज्ञान बटोरने में लगे हैं। आत्मबोध को भूल गये हैं।

— समिदाधानमन्त्र —

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा।। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।

अयं = यह, आत्मा – मेरा आत्मा, ते = तुम्हारे लिए,
इध्म = इन्धन, समिधा है। जातवेदस् – हे सब कुछ जानने वाले, सब में वर्तमान, (अग्नि, अग्निरूप प्रभु, गुरु)
तेन इध्यस्व = उस समित् से प्रज्वलित होओ, वर्धस्व = बढ़ो
अस्मान् च = और हमें, प्रजया = अच्छी सन्तान से,
पशुभि : = गाय आदि पशुओं से, ब्रह्मवर्चसेन = ब्रह्मतेज से,
अन्नाद्येन = अन्न आदि से, वर्धय = बढ़ाओ, हमारी उन्नति में सहायक बनो। इस मन्त्र से प्रथम समिधा अग्नि में अर्पित की आती है।

व्याख्या :– यहां जातवेदस् अग्नि को कहा है जो अप्रत्यक्षरूप से सभी पदार्थों में विद्यमान है। भौतिक अग्नि से उद्योग चलते हैं, कृषि आदि सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं। प्रभु जातवेदस् है, सब जगह विद्यमान है, सर्वज्ञ है, उस प्रभु से प्रार्थना की गयी है कि हम अपना आप को समर्पित करते हैं। आप हमें सुसन्तान से, अन्नादि

से, पशुसम्पदा से युक्त करो तथा ब्रह्मवर्चस् प्रदान करो ताकि हम आप के आनन्द को प्राप्त कर सकें। जातवेदस् का अर्थ सब कुछ जानने वाला गुरु भी है। जब शिष्य हाथ में समिधा लेकर गुरु के समीप जाता है। तो प्रार्थना करता है – हे जातवेदस् गुरु, मेरी आत्मा आप की समिधा है। आप इस से प्रकाशमान हों। मुझे इस योग्य बना दें कि मैं प्रजा, पशुधन, अन्नादि तथा ब्रह्मवर्चस् से युक्त होकर उन्नति करूं और आप का गौरव बढ़ा सकूं। गुरु का यश योग्य शिष्यों से ही बढ़ता है। गुरु का जातवेदस् होना आवश्यक होता है। जो स्वयं नहीं जानता वह शिष्यों को क्या सिखाएगा। शिष्य में भी सीखने की इच्छा और लगन होनी चाहिए। अग्नि सूखी समिधा को ही प्रज्वलित करती है, पत्थर को नहीं जिस में जलने की शक्ति या लगन ही नहीं होती। स्वाहा का अर्थ है आत्मत्याग, स्वार्थत्याग 'ओहाक्त्यागे'। स्वाहा का उलट है स्वार्थसिद्धि 'स्वाहा' यज्ञ साधक है, स्वार्थसिद्धि यज्ञनाशक है। हमारा जीवनयज्ञ, परिवारयज्ञ, समाजयज्ञ, राष्ट्रयज्ञ तभी सफल होते हैं जब हम 'स्वाहा' की भावना से अपने स्व की आहुति देते हैं।

ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन। ओ३म् सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम।

इन दोनों मन्त्रों के उच्चारण के साथ दूसरी समिधा अर्पित की जाती है। (हे यज्ञ करने वालो तुम) **समिधा** = समिधाओं से, **अग्निं** = अग्नि को, **घृतै** : = घी से, **बोधयत** = जगाओ प्रज्वलित करो, **अतिथिं** जैसे अतिथि को (सम्मानित करते हैं वैसे ही) **अग्निं** = अग्नि को, (सम्मानित करो) **हव्या** = सुगन्धित पदार्थों की हवि से **आजुहोतन** = हवन करो।

सुसमिद्धाय = अच्छी तरह प्रज्वलित, **शोचिषे** = शुद्ध करने वाले, दोषों का निवारण करने वाले, 'जातवेदसे अग्नये' जातवेदस् – **अग्नि में, तीव्रं घृतं** = तपे हुए घी की जुहोतन – आहुति दो।

व्याख्या :- यहां भौतिक अग्नि के साथ-साथ आत्माग्नि को भी जगाने की प्रेरणा दी गई है। आत्मारूप अग्नि तो स्वरूप से पावन है पर यह तभी प्रज्वलित होगी जब इन्द्रियरूप समिधाएं शुद्ध और शुष्क होंगी, जब हृदय का तीव्र स्नेह रूपी घृत उस में आहुति रूप में अर्पित किया जाएगा, जब शुद्ध विचारों और कर्मों की हवि उस में डाली जाएगी तभी आत्माग्नि प्रकाशित होकर प्रकाश देगी। भौतिक अग्नि के प्रकाश में तो भौतिक वस्तुओं का दर्शन होता है जो अन्धकार में नहीं दिखाई देतीं परन्तु जब आत्मग्नि का प्रकाश होता है तो उस प्रकाश में परमानन्दरूप ब्रह्म के दर्शन होते हैं।

ओ३म् तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि।
बृहच्छोचा यविष्ठय स्वाहा। इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदं न मम।

अङ्गिर :- हे प्रकाशयुक्त अग्नि, तन्त्वा घृतेन वर्धयामसि-हम तप्त घृत से आप को बढ़ाते हैं। **बृहच्छोचा** - हमें भी महान् प्रकाश से **यविष्ठय** = युक्त करो, **स्वाहा** - हम समर्पित होते हैं।
इदम् = यह, **अङ्गिरसे अग्नये** - प्रकाशयुक्त अग्नि के लिए है।
इदं न मम = यह मेरे लिए नहीं।
तत्पश्चात् पांच घृत की आहुतियां 'अयन्त इध्म आत्मा' मन्त्र से दी जाती है।

--- जलप्रसचेनमन्त्र ---

अग्निकुण्ड के चारों ओर जलप्रसेचन चार मन्त्रों द्वारा करें।

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व (इस से पूर्व दिशा में दक्षिण से उत्तर की ओर)
ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व (इस से पश्चिम दिशा में दक्षिण से उत्तर की ओर)
ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व (इस से उत्तर दिशा में पश्चिम से पूर्व की ओर) यजुः .30.1.

ओ३म् देव सवित : प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्व : केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु (इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर, दीपक के स्थान से प्रारम्भ कर वहीं समाप्त करे)

अदिते – हे अखण्ड परमेश्वर (हमें)

अनुमन्यस्व – हितकारी बुद्धि, अनुमति प्रदान करें।

अनुमते – हे हितकारी बुद्धि वाले प्रभु! हमें

अनुमन्यस्व – हितकारी बुद्धि प्रदान करें।

सरस्वति – हे विद्याओं के भण्डार ज्ञानमय परमेश्वर (हमें)

अनुमन्यस्व – हितकारी बुद्धि प्रदान करें।

व्याख्या :– इन तीनों मन्त्रों में प्रभु से अनुमति देने की प्रार्थना की गई है। मति का अर्थ है सामान्य बुद्धि जो सभी में होती है। जब भूख लगती है तो सभी में इतनी बुद्धि है कि खाना खाने से भूख मिटती है। कुमति का अर्थ है बुरी बुद्धि जो मानव को बुरे कर्मों की ओर ले जाती है। सुमति का अर्थ है अच्छी बुद्धि जो मानव को अच्छे कर्मों की ओर ले जाती है। अनुमति शब्द मति का संसिद्ध रूप है जो आत्मसाधना, अनुमनन, अनुचिन्तन द्वारा प्राप्त बुद्धि है यह सर्वदा सत्य, शिव, सुन्दर, शाश्वत योग की ओर ले जाती है।

देव सवितः = हे प्रकाश देने वाले, सर्जक, प्रेरक देव! सविता का अर्थ प्रकाश करने वाला, प्रसविता तथा प्रेरक है।

भगाय– ऐश्वर्य के लिए, यज्ञं = यज्ञ कर्म को, प्रसुव = प्रेरित करो। यज्ञपतिं – यजमान को भी प्रेरित करो। दिव्य : गन्धर्व : = दिव्य गन्धर्व प्रभु वही है जिस की दिव्यता से सब दिव्य हो जाता है तथा जिस की सुगन्ध से सब सुगन्धित है।

केतपूः – विचारों को पवित्र करने वाला वह प्रभु, न : = हमारे केतं विचारों को, 'कित् ज्ञाने केत का अर्थ है विचार, चाह।

पुनातु = पवित्र करे। वाचस्पति : - वेदवाणी का स्वामी वह प्रभु। न : वाचं स्वदतु = हमारी वाणी को मधुर स्वादिष्ट बनाए।

(आघारावाज्याहुति तथा आज्यभागाहुति मन्त्र)

आघारावाज्याहुति के दो मन्त्र हैं –

ओ३म् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदं न मम।

ओ३म् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय इदं न मम।

– आज्यभागाहुति के दो मन्त्र हैं –

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदं न मम।

ओ३म् इन्द्राय स्वाहा। इदम् इन्द्राय इदं न मम।

अग्नि यहां भौतिक अग्नि, आत्माग्नि तथा परमात्माग्नि है। सोम का अर्थ जीवनी शक्ति है तथा सुख शान्ति प्रदाता आनन्दरूप परमात्मा है।

प्रजापति का अर्थ परमात्मा है जो सब प्रजाओं का पालक पोषक और रक्षक पिता है। अनेक मन्त्रों में कहा गया है कि उसी में सभी भुवन समाये हुए हैं। (यजु. 31.19) तथा वही सब भुवनों के चारों ओर विद्यमान है।

इन्द्र = इन्द्रियों का स्वामी आत्मा। आत्मा को उद्बुद्ध करते हैं तभी वह स्वामी होता है अन्यथा वह इन्द्रियों का दास बन जाता है। जो आत्मचिन्तन करता है वह भोगों से ऊपर उठकर रोगमुक्त होकर विश्व का कल्याण कर पाता है। आत्मचिन्तनरूप हवि से आत्माग्नि को प्रज्वलित करना आवश्यक है।

व्याख्या :– जब यजमान यह जान लेता है कि सभी जगह वही प्रभु रम रहा है, भीतर भी और बाहर भी, तो वह अपनी आत्मा की आहुति उसे ही समर्पित करता है।

(प्रातःकाल के आहुतिमन्त्र)

ओ३म् सूर्यो ज्योति ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।

ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा।

ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा।

(सायंकाल के आहुतिमन्त्र)

ओ३म् अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः स्वाहा।

ओ३म् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्च : स्वाहा।

ओ३म् (अग्निर्ज्योति ज्योतिरग्निः) स्वाहा (मन में उच्चरित)

ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणो ऽग्निर्वेतु स्वाहा।

व्याख्या :– ये यजुर्वेद के तीसरे अध्याय के दो मन्त्र (नौवां, दसवां) हैं जिन्हें विभक्त कर के आठ आहुतियां दी आती हैं। प्रातः की आहुतियों में सूर्य को तथा सायंकाल की आहुतियों में अग्नि को ज्योति अर्थात् प्रकाश और वर्चस् अर्थात् बल रूप कहा है। सूर्य और अग्नि दोनों ही सविता देव द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। सूर्य तो इन्द्रवती अर्थात् – प्रकाशयुक्त उषा के साथ होम की गई आहुतियों का सेवन करता हुआ उन्हें सर्वत्र पहुंचाता है तथा अग्नि इन्द्रवती (बिजली युक्त) रात्रि के साथ आहुतियों का जुषाण सेवन करता हुआ उन्हें सर्वत्र पहुंचाता है।

(प्रात : सायं दोनों समय के आहुति मन्त्र)

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय इदं न मम।।

ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। इदं वायवेऽपानाय इदं न मम।।

ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय इदं मम।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा।। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदं न मम।।

इन चार मन्त्रों द्वारा अग्नि वायु, आदित्य तथा प्राण, अपान,व्यान के लिए आहुतियां समर्पित की जाती हैं।

अग्नि – प्रकाश स्वरूप परमात्मा

वायु – सर्वव्यापक परमात्मा

आदित्य – अखण्डरूप परमात्मा

प्राण – बाहर से नासिकामार्ग से भीतर जाने वाले श्वास को कहते हैं। अथर्ववेद का एक पूरा सूक्त प्राण के महत्त्व का वर्णन करता हैं।

व्यान – प्राण जब शरीर के भीतर जाकर सारे शरीर में व्याप्त होता है। एक एक नस नाड़ी में पहुंच कर जीवन का संचार करता है, तब व्यान कहा जाता है।

अपान – वही प्राण जब व्याप्त कर फिर शरीर के मृत तत्वों और मलों को बाहर निकालते हुए बाहर निकलता है तो अपान कहाता है। मलनिवारण न हो तो शरीर रोगों का घर हो जाता है।

व्याख्या :– यजुर्वेद के चौदहवें अध्याय के सत्रहवें मन्त्र में प्रभु से प्रार्थना की गई है कि मेरे प्राण, व्यान, अपान की रक्षा करो। हमारा जीवन प्राण, व्यान, अपान पर आश्रित है। इन में से कोई भी काम करना बन्द कर दे तो जीवन समाप्त हो जाता है।

ओ३म् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा।।

जल ज्योतिरूप भी हैं और अमृत रस भी हैं। भूः भुवः स्वः ब्रह्म है। इन के लिए आहुति समर्पित है।

ओ३म् यां मेधां देवगणा पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधया अग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा।

हे प्रभो ! जिस मेधा की देवगण और पितर चाह करते हैं, उपासना करते हैं, उस मेधा से मुझे मेधावी बनाओ।

व्याख्या :– मानव के पास दो प्रकार के करण या साधन हैं – बहिःकरण और अन्तःकरण। बहिःकरण में पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां है। अन्तःकरण में बुद्धि, मेधा, मन और चित्त आते हैं। बुद्धि और मेधा का अधिष्ठान मस्तिष्क है जबकि मन और चित्त का अधिष्ठान हृदय है। जब मन अभ्यास और साधना द्वारा शिवसंकल्पयुक्त, पवित्र और समाहित हो जाता है तब वह प्रबुद्ध होता है। मन के प्रबुद्ध होने पर चित्त और बुद्धि भी प्रबुद्ध हो जाते हैं। मन चित्त और बुद्धि के प्रबुद्ध होने पर मेधा में से दिव्य सम्पत्तियों के स्रोत खुल जाते हैं। इस प्रकार मेधाकोश की कुंजी मन के पास है। इसी मेधाकोश में ज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, प्रज्ञा, स्थित–प्रज्ञा, ऋतम्भरा प्रज्ञा जैसे रत्न हैं। सामान्य बुद्धि तो (पागलों को छोड़कर) सब के पास होती है। वह तामसी, राजसी या सात्त्विकी हो सकती है। सात्त्विकी बुद्धि और अधिक परिष्कृत होने पर मेधा की सिद्धि होती है। आत्म–शोधन, आत्मचिन्तन तथा ब्रह्मोपासना से मेधा मिलती है। ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियां ही इस का पान करने में समर्थ होते हैं।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्नऽआसुव स्वाहा।। 1।।

हे सकल जगत् के उत्पादक, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए। जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वह सब हमको प्राप्त कराइये।

ओ३म् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा।। 8।।

हे स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करनेहारे सकल सुखदाता परमेश्वर! आप जिससे सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं कृपा करके हम लोगों को विज्ञान व राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञान व उत्तम कर्म प्राप्त कराइये और हमसे कुटिलतायुक्त पापरूप कर्म को दूर कीजिये, इस कारण हम लोग आपकी बहुत प्रकार की स्तुतिरूप नम्रतापूर्वक प्रशंसा सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ।।8।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न : प्रचोदयात्।

भूः = सत्, भुवः = चित्, स्वः = आनन्द। देवस्य सवितुः : = सविता देव के, तत् = उस, वरेण्यं = वरणीय, भर्ग : = तेज को, धीमहि = हम ध्यान द्वारा धारण करें, यः = जो सविता देव नः = हमारी, धिय : = बुद्धियों को, प्रचोदयात् = सुप्रेरित करें।

— पूर्णाहुति —

ओ३म् सर्वं वै पूर्णं स्वाहा

तीन बार बोल कर तीन आहुतियां दें।

विशेष यज्ञ प्रकरण (पूर्णाहुति प्रकरण)

जब कोई विशेष यज्ञ अथवा संस्कार करना हो, उस समय आचमन से लेकर आज्यभागाहुति तक दैनिक यज्ञ पहले करना चाहिए। उसके पश्चात् निम्नलिखित विशेष मन्त्रों से आहुति देकर, तत्पश्चात् संस्कार वा प्रधान होम करके, और गायत्री मन्त्रों से आहुति देने के बाद पूर्णाहुति देनी चाहिए–

ओम् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदं न मम।

ओम् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय–इदं न मम।

ओम् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये–इदं न मम।

ओम् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय–इदं न मम।

इन मन्त्रों के अर्थ पीछे दिये जा चुके हैं।

व्याहृत्याहुति

ओम् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदं न मम।।

ओम् भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे–इदं न मम।।

ओम् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय–इदं न मम।

ओम् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः– इदं न मम।।

इन मन्त्रों के अर्थ पहले दिये जा चुके हैं।

(स्विष्टकृदाहुतिमन्त्र)

ओ३म् यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्।
अग्निष्टित् स्विष्टकृद् विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा।
इदमग्नये स्विष्टकृते इदं न मम।। आश्व 1.10.32

अस्य कर्मण = इस यज्ञकर्म में, **यत् अति अरीरिचम्** = जो जाने अनजाने अतिकमण हुआ हो, **यद्वा इह** = या जो यहां न्यूनम् **अकरम्** = कम किया हो, **तत्–सर्व** = उस सब को अग्निष्टित् = प्रकाशप्रभु, **स्विष्टकृत्–विद्यात** = हमारी शुभेच्छा जाने, सर्वं स्विष्ट **सुहुतं करोतु मे** – मेरे द्वारा किये इस यज्ञ को लक्ष्य तक पहुंचाए। **सर्वप्रायश्चित्ताहुतीना** – सब प्रायश्चित्त की आहुतियों को स्वीकारने वाले, **कामानां समर्द्धयित्रे** – कामनाओं को पूर्ण करने वाले, स्विष्टकृते सुहुतकृते अग्नये – **अग्निस्वरूप** परमात्मा के लिए यह आहुति समर्पित है, **कामान्त्समर्द्धय** हमारी कामनाएं पूर्ण करो। यह अग्नि के लिए है।

— प्राजापत्याहुति —

ओम् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये–इदन्न मम।।

इन मन्त्र को मन में बोलकर आहुति दें।

इस मन्त्र का अर्थ पहले दिया जा चुका है।

आज्याहुति–मन्त्र

ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा।। इदमग्नये पवमानाय – इदन्न मम।। 1।।

भावार्थ– हे सर्वाधार, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, ज्ञानस्वरूप प्रभो! तुम हमारे जीवनों को पवित्र करने वाले हो। हमें बल और अन्न प्रदान करो और दुर्भाग्य, दुःख और आपत्तियों को हम से दूर रखो। यह मेरी हार्दिक प्रार्थना है। मेरे पास जो भी कुछ है सब आपका ही है। मेरा कुछ नहीं है।

ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयं स्वाहा। इदमग्नये पवमानाय–इदन्न मम।। 2।।

भावार्थ– वह ईश्वर प्राणप्रिय, दुःखविनाशक, सुखस्वरूप स्वप्रकाश – स्वरूप, सर्वद्रष्टा, पवित्रकर्त्ता और निष्पक्ष होकर सबका समान रूप से हित करने वाला है। वह ही हमारा अग्रणी परमेश्वर है। महान् स्तुति के योग्य उस परमपिता को हम प्राप्त करें।

ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा।। इदमग्नये पवमानाय–इदन्न मम।। 3।।

भावार्थ– हे सर्वाधार, दुःखविनाशक, सुखस्वरूप, प्रकाशमय प्रभो! आप उत्तम कर्म करने वाले हैं। आप हमें वर्चस् और पराक्रम देकर पवित्र करो। मुझे ऐश्वर्य–सम्पत्ति और शरीर की पुष्टि दो। यही मेरी प्रार्थना है।

ओम् भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा। इदं प्रजापतये–इदन्न मम।। 4।।

इस मन्त्र का अर्थ पीछे दिया जा चुका है।

अष्टाज्याहुति

इन मन्त्रों से अन्त तक घी की आहुतियां दें।

ओम् त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव–यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा।। इदमग्नीवरुणाभ्याम्–इदन्न मम।।1।

भावार्थ– हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप सब कुछ जानते हैं। ऐसी कृपा करो कि हमारे हाथों श्रेष्ठ वरणीय विद्वान् का अपमान न हो आप यजनीयों में वहन करने वालों में, दीप्तिमान् पदार्थों में सर्वोत्तम हैं। आप हमारे द्वेष भावों को दूर कीजिए। यह आहुति अग्नि और वरुण के लिए है, मेरे लिए नहीं।

ओम् स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा।। इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम।। 2।।

भावार्थ— हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप अपने सभी रक्षा—साधनों से हमारे निकटतम हैं। हमें सुमति प्रदान कीजिए और विद्वानों की संगति कराइए। आप ही मेरे एकमात्र श्रद्धा और स्तुति के पात्र हैं।

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युराचके स्वाहा। इदं वरुणाय—इदन्न मम।। 3।।

भावार्थ— हे वरणीय पिता! आप मेरी प्रार्थना सुनिए और आज मेरी सहायता कीजिए तथा मुझे सुख दीजिए। रक्षा की इच्छा करता हुआ मैं आपको पुकार रहा हूँ। यह वरुण के लिए है, मेरे लिए नहीं।

ओम् तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा। इदं वरुणाय—इदन्न मम।। 4।।

भावार्थ— हे वरणीय प्रभो! वेद मन्त्रों का पाठ करने वाला मैं यही चाहता हूँ कि आपको प्राप्त करूं। हवियों की आहुति देने वाला यजमान तुम्हें ही पाने की आशा करता है। महान् प्रशंसा वाले हे पिता! आप हमारी प्रार्थना को अस्वीकार न करें और हमारी आयु को नष्ट न करें। यह हवि वरुण के लिए है, मेरे लिए नहीं।

ओम् ये ते शतं वरुण ये सहस्त्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नो अद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतःस्वर्काःस्वाहा।। इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्योः मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः— इदन्न मम।। 5।।

भावार्थ— हे वरणीय प्रभो! आपकी सृष्टि में जो बड़े—बड़े सैकड़ों और हजारों बन्धन विस्तृत हैं। सर्वोत्पादक और सर्वव्यापक आप

तथा समस्त प्रशंसित विद्वान् जो समाज के प्राणरूप हैं, हमें यज्ञों की सहायता से इन बन्धनों से छुड़ावें। यह सब कुछ जो मेरे पास है वह वरणीय आप के लिए, सर्वोत्पादक के लिए, सर्वव्यापक के लिए, विद्वानों के लिए, समाज के लिए और अच्छी प्रशंसा वाले के लिए है इसमें मेरा कुछ नहीं है।

ओम् अयाश्चाग्ने ऽस्यनभिशास्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयाऽसि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजं स्वाहा। इदमग्नये अयसे–इदन्न मम।। 6।।

भावार्थ– हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! आप सर्वत्र व्याप्त हैं। सर्वव्यापक होकर हमारा ही सर्वत्र कल्याण करते हैं। आप निर्दोष प्राणियों की रक्षा करते हैं। आप हमारे इस यज्ञ को सफल बनाइये और हम में रोग निवारक शक्ति दीजिए जिससे हम दुःखों और पापों में न पड़ें। मेरे पास जो कुछ है वह आपका ही है। इसमें मेरा कुछ नहीं है।

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा। इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च–इदन्न मम।। 7।।

भावार्थ– हे वरणीय प्रभो! आप मेरे बन्धनों को शिथिल कर दें। हे अविनाशी नित्य परमात्मन्! हम आपके अनुशासन और नियम में रहते हुए हमेशा निष्पाप बने रहें ताकि सर्वथा बन्धनमुक्त हो सकें। यह सब वरुण, आदित्य के लिए है, मेरे लिए नहीं।

ओम् भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञं हिंसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा।। इदं जातवेदोभ्याम्–इदन्न मम।। 8।।

भावार्थ– संसार के समस्त पदार्थों का ज्ञान रखने वाले विद्वान् स्त्री और पुरुष यज्ञपति का हनन न करें और हम सबके लिए कल्याणकारी हों। यही हमारी प्रार्थना है। यह सब विद्वान् स्त्री–पुरुषों के लिए है, मेरे लिए नहीं।

तीन बार घृत से चम्मच भर कर पूर्णाहुति करें।

ओम् सर्व वै पूर्ण स्वाहा।

इति अग्निहोत्रविधिः।।

* * * * * * *

— यज्ञ–प्रार्थना —

यज्ञरूप प्रभो, हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल–कपट को, मानसिक बल दीजिये।।
वेद की बोलें ऋचाएँ, सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे, शोक सागर से तरें।।
अश्वमेधादिक रचायें यज्ञ पर उपकार को।
धर्म–मर्यादा चलाकर, लाभ दें संसार को।।
नित्य श्रद्धा भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें।।
भावना मिट जाए मन से पाप अत्याचार की।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर नार की।।
लाभकारी हो हवन हर प्राणधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हों शुभ गंध को धारण किए।।
स्वार्थ भाव मिटे हमारा प्रेम पथ विस्तार हो।
'इदन्न मम' का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो।।
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक वन्दना हम कर रहे।
'नाथ', करुणारूप करुणा आपकी सब पर रहे।।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्।।

सब का भला करो भगवान्, सब पर दया करो भगवान्।।
सब पर कृपा करो भगवान्, सबका सब विधि हो कल्याण
सबको दो वेदों का ज्ञान, सब के काटो कष्ट महान्।।
त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव।।

वयं त्वां स्मरामो, वयं त्वां भजामो, वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः। सदेकं निधानं निरालम्बमीशम्, भवाम्भोऽधिपोतं शरण्यं व्रजामः।।
स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्ताम् न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यम्, लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।।
बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि।।
मन्युरसि मन्यु' मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि।।

भावार्थ– वह ईश्वर प्राणप्रिय, दुःखविनाशक, सुखस्वरूप, स्वप्रकाश–स्वरूप, सर्वद्रष्टा, पवित्रकर्त्ता और निष्पक्ष होकर सबका समान रूप से हित करने वाला है। वह ही हमारा अग्रणी है। महान् स्तुति के योग्य उस परमपिता को हम प्राप्त करें।

****

मंगलकामना

सुखी बसे संसार सब, दुखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा हम सबकी, भगवन्! पूरी होय।। 1।।
विद्या–बुद्धि तेज बल, सबके भीतर होय।
दूध पूत धन–धान्य से, वंचित रहे न कोय।। 2।।
आपकी भक्ति प्रेम से, मन होवे भरपूर।
राग–द्वेष से चित्त मेरा, कोसों भागे दूर।। 3।।
मिले भरोसा आपका, हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे धाम की, बनी रहे मम ईश।। 4।।
पाप से हमें बचाइये, करके दया दयाल।
अपना भक्त बनाय के सबको करो निहाल।। 5।।
दिल में दया उदारता, मन में प्रेम–अपार।
हृदय में धीरज वीरता, सबको दो करतार।। 6।।
नारायण तुम आप हो, पाप के मोचन हार।
क्षमा करो अपराध सब, कर दो भव से पार।। 7।।
हाथ जोड़ विनती करूँ, सुनिए कृपा निधान।
साधु–संगत सुख दीजिए, दया नम्रता दान।। 8।।

हे ईश ! सब सुखी हों, कोई न हो दुःखारी।
सब हों नीरोग भगवन् धन–धान्य के भण्डारी।।
सब भद्रभाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।
दुःखिया न कोई होवे, सृष्टि में प्राणधारी।।

* * * * * * *

ओम् असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा ऽमृतं गमय।।

मिथ्या मति मिटाकर तुम सत्य में लगा दो, अज्ञान तम हटाकर तुम ज्योति जगमगा दो, जीवन मरण का बन्धन काटने की साधना दो। अमृत सुधा पिलाकर मुझको अमर बना दो।

जय घोष

जो बोले सो अभय --वैदिक धर्म की जय
मर्यादा पुरूषेत्तम श्री रामचन्द्र की --जय
योगिराज श्री कृष्णचन्द्र की --जय
गुरूवर विरजानन्द की --जय
महर्षि दयानन्द सरस्वती की --जय
देश पर बलिदान होने वाले वीरों एवं वीरांगनाओं की --जय
भारत माता की --जय
गऊ माता का --पालन करें
आर्यसमाज --अमर रहे
वेद की ज्योति --जलती रहे
हमें प्रकाश --मिलता रहे
ओ३म का ध्वज़ --ऊंचा रहे
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
वैदिक ध्वनि --ओ३म्

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षम् शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

* * * * * * *

— विशेष मन्त्र —

महा–मृत्युञ्जय मन्त्र

ओम त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।।

— राष्ट्रीय प्रार्थना मन्त्र —

ओम् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म–वर्चसी जायताम्। आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् दोग्ध्री ध्ेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् योगक्षेमो नः कल्पताम्।

— स्तुति मन्त्र —

ओम् स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्ताम् पावमानी द्विजानाम्! आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्।

— नमस्कार–मन्त्रः —

ओम् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च, नमः शङ्कराय च मयस्कराय च, नमः शिवाय च शिवतराय च।

* * * * * * *

(3) अथ भूतयज्ञः (बलिवैश्वदेवयज्ञः)

निम्नलिखित दस मन्त्रों से घृतमिश्रित भात की, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणान्न को छोड़ के पाकशाला में जो कुछ घृतमिश्रित भोजन बना हो, उसी की आहुति करें–

ओम् अग्नये स्वाहा।। 1।। ओम् सोमाय सवाहा।। 2।।

ओम् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।। 3।।

ओम् विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा।। 4।।

ओम् धन्वन्तरये स्वाहा।। 5।। ओम् कुह्वै स्वाहा।। 6।।

आम् अनुमत्यै स्वाहा।। 6।। ओम् प्रजापतये स्वाहा।।7।।

ओम् द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा।। 9।।

ओम् स्विष्टकृते स्वाहा।। 10।।

तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से एक पत्तल व थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग रखना। यदि भाग रखने के काल में कोई अतिथि आ जाये तो उसी को दे देना अथवा अग्नि में डालना चाहिए–

1. ओम् सानुगायेन्द्राय नमः।। इससे पूर्व।
2. ओम् सानुगाय यमाय नमः।। इससे दक्षिण।
3. ओम् सानुगाय वरुणाय नमः।। इससे पश्चिम।
4. ओम् सानुगाय सोमाय नमः।। इससे उत्तर।
5. ओम् मरुद्भ्यो नमः।। इससे द्वार।
6. ओम् अद्भ्यो नमः।। इससे जल।
7. ओम् वनस्पतिभ्यो नमः।। इससे मूसल और ऊखल।
8. ओम् श्रियै नमः।। इससे ईशान।
9. ओम् ब्रह्मपतये नमः।
10. ओम् भद्रकाल्यै नमः।
11. ओं वास्तुपतये नमः। इनसे मध्य।

12. ओम् विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः।

13. ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः।

14. ओम् नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।। इनसे ऊपर।

15. ओम् सर्वात्मभूतये नमः।। इससे पृष्ठ।

16. ओम् पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।। इससे दक्षिण।

तत्पश्चात् निम्नलिखित छः भाग घृतसहित लवणान्न को लेके रक्खे

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि।।

अर्थ– कुत्ते, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि इन छः नामों से छः भाग पृथिवी में धरे और छः भाग जिस जिस नाम के हों उस उस को दे देवें।

—— इति बलिवैश्वदेवविधिः ——

(4) अथ पितृयज्ञः

पितृयज्ञ अर्थात् जीते माता, पिता, आचार्य, गुरु, उपाध्याय आदि मान्यों की यथावत् सेवा करना 'पितृयज्ञ' कहलाता है।।

ईश्वर की आज्ञा है कि 6 प्रकार के पदार्थ पितरों को प्रतिदिन खिलावें। बलकारक पेय फलों के रस, मिष्ट पदार्थ, घी, दूध, यव निर्मित अन्न और पके हुए फल।

ओम्। ऊर्जं वहन्तीः, अमृतं, घृतं, पयः, कीलालं, परिस्त्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्।। – यजुर्वेद ।।

(5) अथ अतिथियज्ञः

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्।। 1।।

जब पूर्ण विद्वान् परोपकारी, सत्योपदेशक, गृहस्थों के घर आवें तब गृहस्थ लोग स्वयं समीप जाकर उक्त विद्वान् को प्रणाम

आदि करके उत्तम आसन पर बिठाकर पूछें कि कल के दिन आपने कहाँ निवास किया था ? हे ब्रह्मन्! जलादि पदार्थ जो आपको अपेक्षित हो ग्रहण कीजिए और हम लोगों को अपने सत्योपदेश से तृप्त कीजिए।

धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपातरहित, शान्त, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा, उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त करना अतिथियज्ञ कहलाता है उसको नित्यप्रति किया करें।

इन पञ्चमहायज्ञों को स्त्री और पुरुष दोनों प्रतिदिन किया करें।

इति नित्यकर्मविधिः समाप्तः।

****

पौर्णमासी की आहुतियाँ

निम्न तीन आहुतियाँ मीठे चावल, खीर अथवा हलवा आदि से दें:

ओ३म् अग्नये स्वाहा (1)

ओ३म् अग्नीषोमाभ्याम् स्वाहा (2)

ओ३म् विष्णवे स्वाहा (3)

— अमावस्या की आहुतियाँ —

निम्नलिखित तीन आहुतियाँ मीठे चावल, खीर, हलवा आदि से दें:—

ओ३म् अग्नये स्वाहा (1)

ओ३म् इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा (2)

ओ३म् विष्णवे स्वाहा (3)

— व्याहृति आहुतियां (ये आहुतियां घृत से देवें) —

ओं भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये–इदं न मम।।१।।

ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे–इदं न मम।। २।।

ओं स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय–इदं न मम।। ३।।

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा।

इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः – इदं न मम।। ४।।

— विशेष मंत्र —

ओ३म् वसोः पवित्रमसि शतधारं वसो
पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता
पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।

— यजमानों के प्रति आशीर्वचन —

ओ३म् सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः।
ओ३म् सफलाः सन्तु यजमानस्य कामाः।
ओ३म् सौभाग्यमस्तु।
ओ३म् शुभम् भवतु।
ओ३म् स्वस्ति स्वस्ति स्वस्ति।

ओ३म् स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः
स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽअरिष्टनेमिः
स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।

— रात्रि में सोते समय बोलने के मन्त्र —

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।1।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। 2।।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु
।। 3।।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।4।।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। 5।।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।। 6।।

जन्म–दिवस (वर्षगाँठ) पर विशेष आहुतियाँ

ओ३म् उप प्रियं पनिप्नतं युवानमाहुतिवृधम्। अगन्म बिभ्रतो नमो दीर्घमायुः कृणोतु मे स्वाहा।।

भावार्थ– हे स्तुति–योग्य प्रिय परमेश्वर! मुझे स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन देकर आयुष्मान् करें। जिस प्रकार आहुतियों के द्वारा

यह यज्ञ–अग्नि बढ़ रही है, वैसे ही मैं भी सात्त्विक, पौष्टिक भोजन करते हुए यौवन को प्राप्त करूँ और प्रतिवर्ष इसी प्रकार अपना जन्म–दिवस मनाता रहूँ।

ओ३म् इन्द्र जीव सूर्य जीव देवा जीवा जीव्यासमहम् सर्वमायुर् जीव्यासमहं स्वाहा।

भावार्थ– हे परम ऐश्वर्य के स्वामी, सर्वप्रकाशक, देवाधिदेव प्रभु! हमें जीवन धारण कराइए, आयुष्मान् कीजिए, स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन दीजिए। हे परम पिता! आपकी कृपा से मैं अपनी पूर्ण आयु जीवन धारण करूँ, मुझे कभी भी अकालमृत्यु का ग्रास न बनना पड़े।।

जन्म–दिवस पर बालक/बालिका को आशीर्वाद

हे (बालक......!) त्वम् जीव शरदः शतं वर्धमानः! त्वम् आयुष्मान्, वर्चस्वी, तेजस्वी, श्रीमान्, धीमान्, विद्वान् च भूयाः।।(हे बालक! तुम सौ वर्षों तक जीवो, बढ़ो, फलो–फूलो। तुम आयुष्मान, वर्चस्वी तेजस्वी, श्रीमान्, बुद्धिमान् और विद्वान् बनो)

हे (बालिके......!) त्वम् जीव शरदः शतं वर्धमाना। त्वम् आयुष्मती, वर्चस्विनी, तेजस्विनी, श्रीमती, धीमती, विदुषी च भूयाः।। (हे बालिका! तुम सौ वर्षों तक जीवो, बढ़ो, फलो–फूलो। तुम आयुष्मती, वर्चस्विनी, तेजस्विनी, श्रीमती, बुद्धिमती और विदुषी बनो)

–– भोजन के समय की प्रार्थना ––

ओ३म् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।

भावार्थ– हे अन्नपति परमेश्वर! आपकी कृपा से प्राप्त यह अन्न हमें रोगरहित करनेवाला तथा बल प्रदान करनेवाला हो। प्रभुवर! अन्नदान करनेवाले मनुष्यों को आप ही परम सन्तोष देते हैं। प्रभु! जिस अन्न से मैने बलिवैश्वदेव आदि यज्ञ सम्पन्न किए है, ऐसा यह अन्न हमारे दो पैर वाले सेवक आदि के लिए तथा चार पैर वाले गाय–कुत्ते आदि के लिए ऊर्जा प्रदान करनेवाला हो।

यज्ञोपवीत–धारण–मन्त्र

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर् यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।
ओ३म् यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।।

भावार्थ– हे प्रजापति प्रभु! गर्भ में जरायु के रूप में आप द्वारा धारण कराए गए स्वाभाविक परम पवित्र यज्ञोपवीत के प्रतीकरूप में धारण किया हुआ यह श्वेत–शुद्ध यज्ञोपवीत मेरे लिए बल और तेज देने वाला हो। आपकी कृपा से यह यज्ञोपवीत मुझे यज्ञ–बुद्धि से कार्य करने का बोध कराता रहे और इसे धारण कर मैं सदैव यज्ञ–भावना से आबद्ध रहूँ।

* * * * * * *

— आर्यसमाज के नियम —

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिएं।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएं।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

* * * * * * *

संगठन सूक्त (ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त)

ओम् सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ।।२।।

अर्थ– (वृषन्–अग्ने) हे सुखवर्षक! अग्रनायक परमात्न्। (अर्यः) तू स्वामी होता हुआ (विश्वानि) सब जड़ जङ्गम वस्तुओं को (इत्) सचमुच (सम् आ युवसे) सम्यक् भली–भांति सम्प्राप्त है। (इडः पदे) – पार्थिव देह के – हृदय स्थान में (सम् इध्यसे) सम्यक् प्रकाशित होता है, (सः) ऐसा तू (नः) हमारे लिये (वसूनि) बसाने वाले धनों को (आभर) प्राप्त करा।

पद्यानुवादः–

हे प्रभो! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं, कीजिए धन वृष्टि को।।१।।

सगंच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।२।।

अर्थ– (संगच्छध्वम्) तुम सब एक साथ चलो। (सं वदध्वम्) तुम सब एक साथ बोलो, एक सा बोलो, (वः) तुम्हारे (मनांसि) मन (सं जानताम्) एक सा जानें। (यथा) जिस प्रकार (पूर्वे) पूर्व (देवाः) व्यवहार कुशल = कर्त्तव्यनिष्ठ, ज्ञानी (सं+जानानाः) एकता को जानते हुए, (भागम्) कर्त्तव्य को, सेवा को (उप आसते) सेवन करते थे।

* * * * * * *

पद्यानुवादः–

प्रेम से मिलकर चलो, बोलो, सभी ज्ञानी बनो,

पूर्वजों की भांति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो।।२।।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।। ३।।

अर्थ– (मन्त्रः) तुम्हारा मन्त्र विचार (समान): एक हो। (समितिः) सभा संगति, (समानी) एक जैसी हो। (मनः) मन (समानम्) एक सा हो, (एषाम्) इनका (चित्तम्) चित्त, समझ (सह) साथ हो, (वः) क्योंकि तुम्हारे लिये (समानम्) एक से (मन्त्रम्) मन्त्र को (वेद मन्त्र को) (अभिमन्त्रये) सम्पादित करता हूँ, (वः) तुमको (समानेन) समान (हविषा) हवि अन्न उपभोग के लिए (जुहामि) देता हूँ।

पद्यानुवादः–

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।

ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों।।३।।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।४।

..ऋ. १०/ १९१/मं.१–४

अर्थ– (वः) तुम्हारी (आकूतिः) संकल्प शक्ति (समानी) एक जैसी हो। (वः) तुम्हारे (हृदयानि) हृदय–दिल भावनाएं (समाना) एक से हों। (वः) तुम्हारा (मनः) मन–मारित्तष्क–दिमाग (समानम्) एक समान (अस्तु) हो। (यथा) जिससे (वः) तुम्हारा (सह) बल, (सुसह–असति) उत्तम प्रकार का होवे।

पद्यानुवादः–

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।

मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा।।

(शान्ति गीत)

शान्ति कीजिये प्रभु त्रिभुवन में।। शान्ति.............
जल में थल में और गगन में,
अन्तरिक्ष में अग्नि पवन में।
औषधि वनस्पति वन उपवन में,
सकल विश्व में जड़ चेतन में।।१।।

शान्ति कीजिये प्रभु त्रिभुवन में।।
ब्राह्मण के उपदेश वचन में,
क्षत्रिय के द्वारा हो रण में।
वैश्य जनों के होवे धन में,
और शूद्र के हो चरणन में।।२।।

शान्ति कीजिये प्रभु त्रिभुवन में।।
शान्ति राष्ट्र निर्माण सृजन में,
नगर ग्राम में और भवन में।
जीव मात्र के तन में मन में,
और जगत् के हो कण–कण में।।३।।
शान्ति कीजिये प्रभु त्रिभुवन में।। शान्ति.............

* * * * * * *

–– राष्ट्रगीत वन्दे मातरम् ––

वन्दे मातरम् वन्दे मातरम्।
सुजलाम् सुफलाम् मलयजशीतलाम्।
शस्यश्यामलाम् मातरम्।
वन्दे मातरम् ....।
शुभ्रज्योत्सनाम् पुलकितयामिनीम्
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्।
सुहासिनीं सुमधुर–भाषिणीम्,
सुखदां वरदां मातरम्।। वन्दे......

आर्य ध्वज गीत का संशोधित स्वरूप

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की 28–8–55 की अन्तरंग के निश्चयानुसार आर्य ध्वज गीत निम्न प्रकार संशोधित होकर प्रचारित किया गया है। भविष्य में उक्त गीत का संशोधित रूप में ही प्रयोग होना चाहिए।

जयति ओ३म् ध्वज व्योम बिहारी।
विश्व प्रेम सरिता अति प्यारी।।ध्रुव।।

सत्य सुधा बरसाने वाला, स्नेह लता सरसाने वाला।
सौख्य सुमन विकसाने वाला, विश्व विमोहक रिपु भयहारी।।
इसके नीचे बढ़े अभय–मन, सत्पथ पर सब धर्म धुरी जन।
वैदिक रवि का हो शुभ उदयन, आलोकित होवें दिशि सारी।।
इसी ध्वजा के नीचे आकर, नीच ऊंच का भेद भुला कर।
मिले विश्व मुद मंगल गाकर, घोर अविद्या तम संहारी।।
इस ध्वज को लेकर हम कर में, भर दें वेदज्ञान जग भर में।
सुभग शान्ति फैले घर घर में, मिटे अविद्या की अंधियारी।
आर्यजाति का यश अक्षय हो, आर्यध्वजा की अविचल जय हो।
आर्यजनों का ध्रुव निश्चय हो, आर्य बनावें वसुधा सारी।।

* * * * * * *

—— भजन ——

आज सब मिल गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद।
जिसका यश नित गाते हैं गन्धर्व मुनिजन धन्यवाद।।
मन्दिरों में कन्दरों में पर्वतों के शिखर पर।।
देते हैं लगातार सौ–सौ बार मुनिवर धन्यवाद।।
करते हैं जंगल में मंगल पक्षिगण हर शाख पर।।
पाते हैं आनन्द मिल गाते हैं स्वर भर धन्यवाद।।
कूप में तालाब में सागर की गहरी धार में।
प्रेम रस में तृप्त हो करते हैं जलचर धन्यवाद।।
शादियों में कीर्तनों में यज्ञ उत्सव आदि में।
मीठे स्वर से चाहिये करें नारी–नर सब धन्यवाद।।
गान कर 'अमीचन्द' भजनानन्द ईश्वर की स्तुति।
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता कान धर–धर धन्यवाद।

****

—— यज्ञ महिमा ——

होता है सारे विश्व का कल्याण यज्ञ से।
जल्दी प्रसन्न होते हैं भगवान् यज्ञ से।।

१— ऋषियों ने ऊंचा माना है स्थान यज्ञ का।
करते हैं दुनिया वाले सब सन्मान यज्ञ का।
दर्जा है तीन लोक में — महान् यज्ञ का।
भगवान् का है यज्ञ और भगवान् यज्ञ का
जाता है देव लोक में इन्सान यज्ञ से। जल्दी प्रसन्न......

२— करना हो यज्ञ प्रकट हो जाते हैं अग्नि देव।
डालो विहित पदार्थ शुद्ध खाते हैं अग्नि देव।
सबको प्रसाद यज्ञ का पहुंचाते हैं अग्नि देव।
बादल बना के भूमि पर, बरसाते हैं अग्नि देव।
होता अनाज पैदा इस महान यज्ञ से।। जल्दी प्रसन्न......

३— शक्ति ओर तेज यश भरा इस शुद्ध नाम में।
साक्षी यही है विश्व के हर नेक काम में।
पूजा है इसको कृष्ण ने, और राम ने।
होता है कन्या दान भी इसी के सामने।
मिलता है राज्य, कीर्ति, सन्तान यज्ञ से। जल्दी प्रसन्न......

४— सुख शान्ति दायक मानते हैं सब मुनि इसे।
वशिष्ठ विश्वामित्र ओर नारद मुनि इसे।
इसका पुजारी कोई पराजित नहीं होता।
भय यज्ञ कर्ता को कभी किञ्चित् नहीं होता।
होती हैं सारी मुश्किलें आसान यज्ञ से।। जल्दी प्रसन्न......

५— चाहे अमीर है कोई चाहे गरीब है।
जो नित्य यज्ञ करता है वह खुश नसीब है।
हम सब में आये यज्ञ के अर्थों की भावना।
'जख्मी' के सच्चे दिल से है यह श्रेष्ठ कामना।
होती हैं पूर्ण कामना — महान् यज्ञ से।। जल्दी प्रसन्न......

* * * * * * *

आर्यसमाज स्थापना का उद्देश्य

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज स्थापना का प्रथम उद्देश्य था, 'कृण्वन्ती विश्वमार्यम्' अर्थात् सारे विश्व को आर्य (श्रेष्ठ) बनाना एवं उत्तम मानवों का निर्माण करना।
2. दूसरा उद्देश्य था, वेद को विश्वधर्म बनाना तथा भारतीय एवं विदेशी स्वार्थी विद्वानों द्वारा वेदों पर लगाए गये लांछनों को दूर करना, तथा वेदों में प्रकृति पूजा, देवता पूजा, वेदों में इतिहास, बलिदान, अश्लीलता आदि विचारों का खण्डन कर संस्कृत तथा संस्कृत साहित्य का प्रसार करना।
3. तीसरा उद्देश्य था, भारत के तमाम मत–मतान्तरों को परिष्कृत कर, एक सत्य, सनातन, वैदिक धर्म की स्थापना करना तथा सब मनुष्यों को एक ओ३म् के झण्डे तले लाना, एक धर्म, एक भाषा, एक ईश्वर पूजा की स्थापना करना एवं नास्तिकता का नाश करना।
4. भारतीय संस्कृति व सभ्यता का प्रचार प्रसार कर अन्धविश्वास और कुरीतियों का नाश करना।
5. गोपालन करना, अनाथों, असहायों, निर्बलों, विधवाओं की रक्षा करना।
6. स्त्रियों, अछूतों की परतन्त्रता दूर करना तथा बिछुड़े भाइयों को पुन : छाती से लगाना।
7. सुराज्य, स्वराज्य की स्थापना कर, चक्रवर्ती राज्य की ओर अग्रसर होना, सार्वभौमिक संविधान द्वारा सारे संसार का उपकार करना तथा शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक उन्नति करना।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना।
9. वैदिक साम्यवाद की स्थापना करना, जिस से सब लोगों को रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, और, भगवद्भक्ति का समान अधिकार हो। अज्ञान, अन्याय और अभाव का सर्वथा विनाश हो।

आप भी परिवार, समाज व राष्ट्र की सुख समृद्धि व शान्ति तथा जन सेवा के लिए अपने निकट के आर्य समाज के साथ अवश्य जुड़ें।

ओ३म्

वेद

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद

वेद संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक है परमपिता परमात्मा द्वारा सृष्टि के आरम्भ में सृष्टि-संचालन हेतु दिया गया ज्ञान है। आओ, यदि हम ज्ञान-विज्ञान के भण्डार के मूल स्त्रोत को जानना चाहते हैं तो वेद अवश्य पढ़ें।

हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवादों में उपलब्ध

क्या आप जानना चाहते हैं कि

दुःखों का कारण क्या है?

शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है?

यज्ञों से मानव कल्याण कैसे सम्भव है?

गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्य क्या होते हैं?

सन्तान का व्यक्तित्व और चरित्र निर्माण कैसे करें?

हमारी शिक्षा पद्धति कैसी हो?

राजनीति का सच्चा स्वरूप कैसा होना चाहिए?

धर्म और विज्ञान एक-दूसरे के विरोधी हैं या सहयोगी हैं?

ईश्वर का स्वरूप और उसकी सच्ची पूजा, भक्ति क्या हैं?

हमारे जीवन में सुख, शान्ति, समाज में सहृदयता कैसे आए?

तो यह सब जानने और जीवन में धारण करने वाला विवेक प्राप्त करने के लिए, प्राचीन ऋषियों के सहस्रों ग्रन्थों का निचोड़ प्रस्तुत करने वाला, क्रांतिकारियों का प्रेरणा स्रोत महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश अवश्य पढ़ें।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम चन्द्र

योगीराज कृष्ण चन्द्र

लाल बहादुर शास्त्री

राजकीय क्षेत्र में अभूतपूर्व कार्य करने वाले महर्षि दयानन्द महान राष्ट्रनायक और क्रान्तिकारी महापुरुष थे।

लाला लजपत राय

स्वामी दयानन्द मेरे गुरू हैं उन्होंने हमें स्वतंत्रतापूर्वक विचारना, बोलना और कर्त्तव्य पालन करना सिखाया।

सुभाष चन्द्र बोस

आधुनिक भारत के आद्य निर्माता तो दयानन्द ही है।

डॉ राजेन्द्र प्रसाद

सत्यार्थ प्रकाश जैसा दूसरा ग्रन्थ मैने नही पढ़ा।

चक्रवर्ती राजा गोपालाचार्य

महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव यदि उस समय न होता तो यह भारत देश आज इस्लामिस्तान होता या ईसाइस्तान होता।

सरदार भगत सिंह

हमारे विचार तथा मानसिक विकास अधिकाश आर्यसमाज की ही देन है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

सत्य को अपना ध्येय बनाएं और दयानन्द को अपना आदर्श बनाएं।

रवीन्द्र नाथ टैगोर

मेरा सादर प्रणाम है उस दयानन्द गुरु को जिसने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता के दर्शन किए। जिसका उद्देश्य भारत देश को अविद्या आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था।

सरदार वल्लब भाई पटेल

भारतीय स्वाधीनता की नींव रखने वाले वास्तव में महर्षि दयानन्द ही थे।

विनायक दामोदर सावरकर

महर्षि दयानन्द स्वीधनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा थे।

बाल गंगाधर तिलक

स्वराज्य और स्वदेशी का सर्वप्रथम मन्त्र प्रदान करने वाले जाज्वल्यमान नक्षत्र थे दयानन्द।

दादाभाई नौरोजी

मुझे स्वतंत्रता संग्राम में सर्वाधिक प्रेरणा महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों से मिली हैं।

जननी जनै तो धीर जन, के दाता के नूर।
नही तो जननी बाँझ रहे, क्यों वृथा गवावें नूर।।
इन्सान वह नहीं है, जो हवा के रुख से बदले।
इन्सान वही है जो, हवा के रुख को बदले।।